तरुचिन्तन

2023

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)
देहरादून (उत्तराखण्ड)

तरुचिन्तन

2023

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)

देहरादून- 248006 (उत्तराखंड)

संरक्षक

श्रीमती कंचन देवी, भा.व.से.

महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

संपादक मंडल

प्रधान संपादक

डॉ. सुधीर कुमार

उप महानिदेशक (विस्तार)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

संपादक

डॉ. गीता जोशी

सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

सहायक संपादक

श्री शंकर शर्मा

सहायक निदेशक (राजभाषा)

संपादन सहयोग

श्री अवनीश कुमार

हिंदी अनुवादक (संविदा)

श्रीमती अंबिका प्राजुली

हिंदी अनुवादक (संविदा)

प्रकाशक

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग

विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्,

डाकघर – न्यू फॉरेस्ट

देहरादून- 248006 (उत्तराखंड), भारत

अस्वीकरण (डिस्क्लेमर)

तरुचिंतन में व्यक्त किए गए विचार लेखक के निजी विचार हैं। इसमें दी गई किसी भी सूचना की सटीकता, संपूर्णता, व्यावहारिकता अथवा सच्चाई के प्रति संपादक मंडल उत्तरदायी नहीं है।

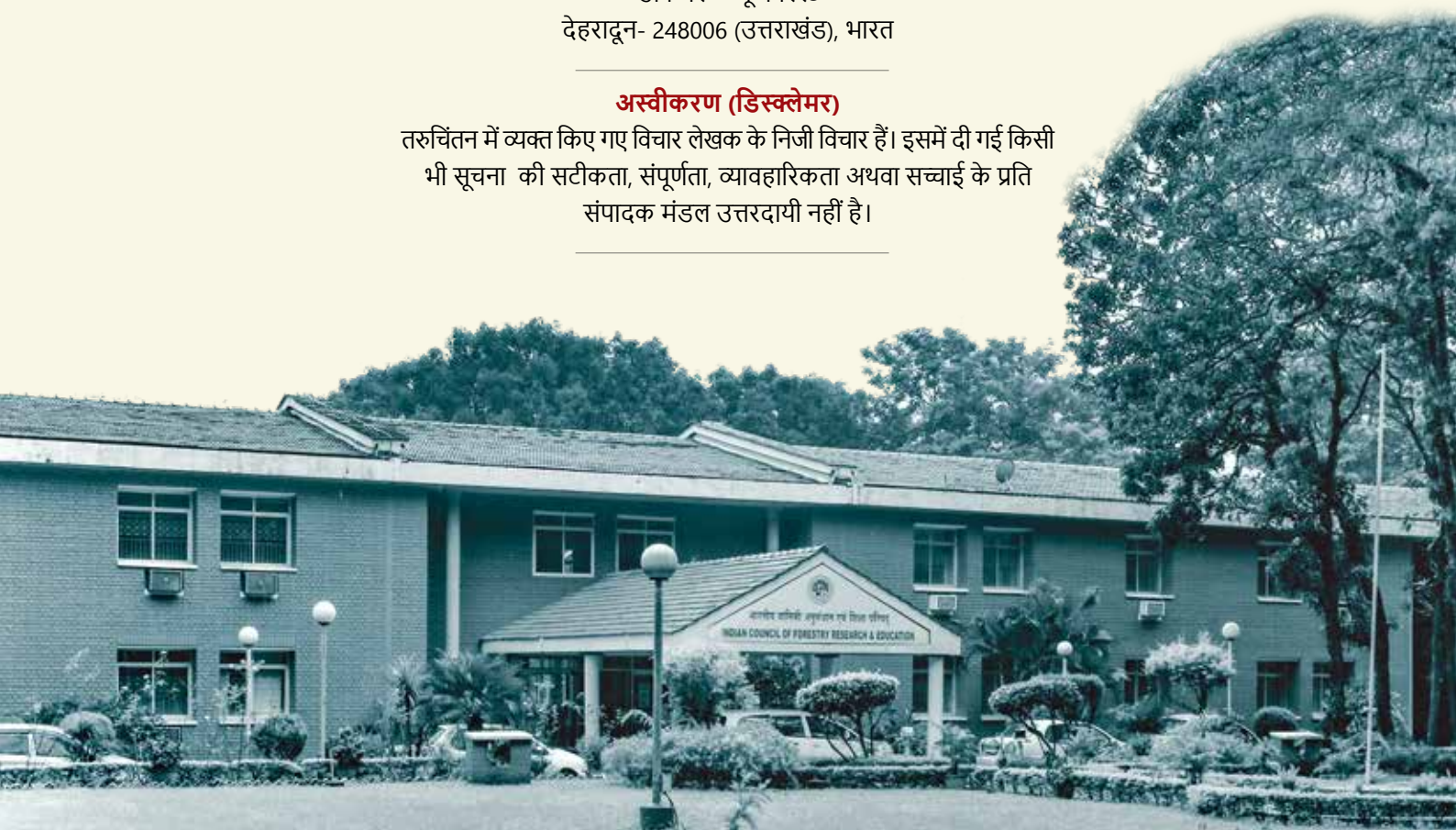

सत्यमेव जयते

महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट, देहरादून- 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक की कलम से.....

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद अपने प्रारंभ से वानिकी से संबंधित सभी पहलुओं को भारत के चहुदिशाओं में स्थित अपने 9 क्षेत्रीय संस्थानों और 5 केन्द्रों में कार्यरत उत्कृष्ट वैज्ञानिक और तकनीकी मानव सम्पदा के माध्यम से नई दिशा देने में विश्व भर में अग्रणी संगठन है। 'अनेकता में एकता' जैसी विशिष्ट पहचान से परिपूर्ण विशाल भारतवर्ष एक बहुभाषिक देश है एवं परिषद के संस्थान और केंद्र इसी वैविध्यपूर्ण सामासिक संस्कृति का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। परिषद और संस्थानों में कार्यरत वैज्ञानिक, अधिकारी और कार्मिक अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी में भी वार्तालाप और अन्य सरकारी कामकाज करते हैं। हिन्दी एक ऐसा सूत्र है जो एक माला के मनकों की तरह हर एक के मन को जोड़े रखती है, यही हिन्दी भाषा का गौरव है।

हमारे संविधान प्रणेताओं ने हिन्दी की व्यापक स्वीकार्यता को हृदयंगम करते हुए संविधान में हिन्दी को राजभाषा और आठवीं अनुसूची में शामिल 22 भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा के रूप में दर्जा दिया था। अनुच्छेद 343 से 351 तक संविधान में राजभाषा की व्यवस्था की गई है और अनुच्छेद 351 में संघ सरकार को यह निर्देश दिया गया है कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। राजभाषा के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने और परिषद तथा सभी संस्थानों में लोगों को जागरूक करने के लिए अनेक प्रयास किए जाते हैं। परिषद में समय-समय पर राजभाषा कार्यशालाएँ, प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं और सितंबर माह में 'हिन्दी दिवस' एवं 'हिन्दी पखवाड़ा' मनाया जाता है। राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में नियमित रूप से संस्थानों के निदेशकों के साथ राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की प्रगति की स्थिति पर वीडियो-कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से चर्चा की जाती है। पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति की बैठकों में वरिष्ठ अधिकारी प्रतिभाग करते हैं। इसके अतिरिक्त, राजभाषा विभाग द्वारा वर्ष 2022 में सूरत, गुजरात तथा 2023 में पुणे, महाराष्ट्र में आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलनों में भी परिषद ने प्रतिभाग किया है। इन आयोजनों में हुई चर्चाओं के निष्कर्षों को परिषद की राजभाषा कार्यान्वयन समिति में चर्चा के उपरांत यथा आवश्यक परिषद में कार्यान्वित किया जाता है।

परिषद की वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरुचिन्तन" का निरंतर प्रकाशन राजभाषा के प्रचार-प्रसार में एक सशक्त कदम है। परिषद में कार्यरत अधिकारियों और कर्मचारियों एवं उनके परिजनों के वानिकी तथा संबन्धित विषयों पर प्रकाशित विभिन्न ज्ञानवर्धक लेखों, सुरुचिपूर्ण कहानियों, कविताओं से "तरुचिन्तन" पुष्पित-पल्लवित होती आ रही है। इसके लिए सभी लेखक सराहना के पात्र हैं।

मैं "तरुचिन्तन-2023" में प्रकाशनार्थ उत्कृष्ट सामग्री के लिए लेखकों और संपादक मण्डल को उनके अथक प्रयास के लिए अनेक बधाई देती हूँ।

कंचन

(कंचन देवी)

छायाचित्र आभार: जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट, देहरादून- 248006 (उत्तराखंड), भारत

प्रधान संपादक की कलम से.....

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून की वार्षिक गृह पत्रिका 'तरूचिंतन' का 15वां अंक प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है।

हमारी राजभाषा हिंदी न सिर्फ विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में दूसरे स्थान पर है बल्कि देश में यह सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारत की जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में हिंदी बोलने वालों की संख्या करीब 53 करोड़ है यानि देश की करीब 44% जनसंख्या हिंदी बोलती-समझती है। ऐसे में सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जनोपयोगी अनुसंधान परिणामों को लोगों तक पहुंचाने के लिए हिंदी सशक्त माध्यम के रूप में कार्य करती है और इसका एक विशेष महत्व है।

परिषद के कार्यों के मूल में अनुसंधान होने के नाते उसकी विस्तार गतिविधियों हेतु राजभाषा हिंदी की महत्ता समझी जा सकती है। भा.वा.अ.शि.प. के 9 संस्थान एवं 5 केंद्र हैं जो मूल रूप से विभिन्न प्रकार के वानिकी विषयों पर अनुसंधान का कार्य करते हैं। परिषद् का उद्देश्य अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार द्वारा सतत आधार पर वनों से संबंधित समस्याओं को निपटाने और लोगों, वनों औऱ पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होने वाले संयोजनों को प्रोन्नत करने के लिए जानकारी प्रौद्योगिकियों एवं समाधानों को सृजित, परिरक्षित, प्रसारित एवं उन्नत करना है। इस तरह देखा जाए तो एक तरफ तो परिषद् के पास अनुसंधान आधारित कार्य हैं और दूसरी तरफ उनके परिणामों को संबंधित जनों के बीच संचारित भी करना है। ऐसे में विस्तार गतिविधियों के अंतर्गत अधिकतम पहुंच बढ़ाने के उद्देश्य से परिषद् विस्तार गतिविधियों हेतु स्थानीय भाषाओं के साथ ही साथ राजभाषा हिंदी के प्रयोग को वरीयता प्रदान करती है। इस प्रकार परिषद् अपने दायित्वों के निर्वहन तथा काम-काज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के अपने उद्देश्य के लिए निरंतर प्रयासरत है।

यह बहुत सुखद है कि प्रतिवर्ष हिंदीभाषी क्षेत्रों के साथ-साथ भा.वा.अ.शि.प. के अहिंदीभाषी राज्यों में स्थित संस्थान भी 'तरूचिंतन' में प्रकाशन हेतु अपनी रचना बड़े चाव से भेजकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इस तरह 'तरूचिंतन' के प्रकाशन से न सिर्फ परिषद् के राजभाषा दायित्वों के निर्वहन में मदद मिलती है बल्कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर सरल एवं सहज हिंदी में लेखों के प्रकाशन से वृहत्तर जन समुदाय के मध्य जानकारी के प्रसार में भी मदद मिलती है।

पत्रिका में मुख्य रूप से चार खंड हैं। राजभाषा खंड में वर्तमान वर्ष की राजभाषा गतिविधियों का संक्षिप्त सचित्र ब्यौरा प्रकाशित किया गया है। वानिकी खंड में वानिकी एवं पर्यावरण से संबंधित विषयों पर स्तरीय लेख प्रकाशित किए गए हैं। विविधा खंड में विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित किए गए हैं तथा कविता, ललित निबंध इत्यादि साहित्यिक प्रवृत्ति की रचनाओं को लालित्य खंड में स्थान दिया गया है।

'तरूचिंतन' के इस अंक के सुरूचिपूर्ण संकलन-संपादन एवं प्रस्तुतिकरण के लिए मैं डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) एवं मीडिया एवं विस्तार प्रभाग के सभी सदस्यों को बधाई देता हूँ। साथ ही, मैं इस अंक के सभी लेखकों को उनके ज्ञानवर्धक लेखों के लिए भी बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह अंक आप सभी का ज्ञानवर्धन तथा मनोरजंन करने में सफल होगा।

डॉ. सुधीर कुमार

छायाचित्र आभार: जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट, देहरादून- 248006 (उत्तराखंड), भारत

संपादक की कलम से.....

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद की वार्षिक गृह पत्रिका "तरुचिन्तन" का नवीनतम अंक सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। परिषद के लिए गौरव का विषय है कि वर्ष 2009 से तरुचिन्तन पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है। संस्थानों और केन्द्रों में कार्यरत अधिकारियों और कार्मिकों द्वारा भेंजे गए उत्कृष्ट लेखों, कहानियों और कविताओं ने इस अंक को भी समृद्ध किया है। मुझे विश्वास है कि पत्रिका का यह अंक आपको पसंद आएगा।

किसी भी संगठन के लिए उत्कृष्ट मानव संसाधन अमूल्य परिसंपत्ति होता है। हमारे परिषद में ऐसे ही कर्मठ कार्मिक परिषद के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु निरंतर कार्यशील है। हमारें वैज्ञानिक, अधिकारी और कर्मचारी अपने निर्धारित कार्यों को करते हुए भारत सरकार की राजभाषा संबंधी अपेक्षाओं को भी पूरा करने हेतु प्रयासरत हैं। विभिन्न कार्यशालाओं, बैठकों के माध्यम से कार्यालय में राजभाषा के प्रति सकारात्मक परिवेश को निरंतर विकासोन्मुख रखने के लिए प्रयास किया जाता है।

परिषद न सिर्फ राजभाषा हिंदी की प्रगति की समीक्षा करती है बल्कि हिंदी में अधिकाधिक कार्य करने वाले व्यक्तियों/संस्थानों को पुरस्कृत भी करती है। वित्तीय वर्ष 2022-23 के दौरान 'क' क्षेत्र स्थित संस्थानों में भा.वा.अ.शि.प.-हि.व.अ.सं., शिमला को तथा 'ग' क्षेत्र स्थित संस्थानों में भा.वा.अ.शि.प.-व.आ.वृ.प्र.सं., कोयम्बटूर को राजभाषा हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने हेतु सम्मानित किया गया। इसके साथ ही परिषद् मुख्यालय में अपना अधिकतम कार्य राजभाषा हिंदी में करने हेतु 9 कर्मचारियों एवं 3 संविदा कर्मियों को नकद पुरस्कार एवं प्रमाणपत्र से सम्मानित किया गया।

हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में हमारें अधिकारी और कार्मिक बढ़चढ़ कर भाग लेते हैं। हम केवल राजभाषा के लक्ष्यों के प्राप्त करने के लिए ही प्रयासरत नहीं हैं अपितु हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के निमित्त कार्य करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इस दिशा में वानिकी विषयों पर जनोपयोगी प्रकाशनों से वैज्ञानिक अनुसंधान को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य किया जा रहा है। कृषि वानिकी करने वाले किसानों के लिए 'कृषि वानिकी पर महत्वपूर्ण प्रश्न' नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक का हिंदी में प्रकाशन किया गया है।

पत्रिका के वर्तमान अंक में 79 रचनाकारों के वानिकी और अन्य विविध विषयों से जुड़े 33 लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं। वानिकी खंड में 'औषधीय गुणों से भरपूर हिमालयी सरू', 'हिमालयी हॉर्नबीम', हिमालयी क्षेत्रों की महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजातियां -'ठंगी' और 'बेहमी' पर ज्ञानवर्धक लेख, हर्बल औषधियों के गुणवत्ता नियंत्रण और नैनों प्रौद्योगिकी पर महत्वपूर्ण लेख शामिल किए गए हैं। विविधा खंड में 'मिलेट्स', 'रेशम उद्योग में रोजगार की संभावनाएं' और 'वैज्ञानिक अनुसंधान में हिंदी भाषा का उपयोग' विषय पर लेख प्रकाशित किए गए हैं। लालित्य खंड में 'बेटी की नजरों में पिता' और 'गुरू की महिमा' सहित सात कविताएं प्रकाशित की गई हैं। पत्रिका के राजभाषा खंड में परिषद और संस्थानों में विगत वर्ष में हुई उल्लेखनीय राजभाषा गतिविधियों पर संस्थानवार संक्षिप्त सचित्र प्रतिवेदन प्रस्तुत की गई हैं। वानिकी खंड में वानिकी संबंधी विषयों पर आलेख हैं, विविधा में विविध विषयों पर रोचक लेख हैं और लालित्य में प्रेरक कविताएं हैं।

मैं सुधी पाठकों से आग्रह करती हूँ कि इस पत्रिका को और अधिक सारगर्भित बनाने में अपना बहुमूल्य सुझाव दें। आपके सुझाव और मार्गदर्शन हमारे लिए प्रेरणास्रोत हैं।

डॉ. गीता जोशी

छायाचित्र आभार: जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

विषय सूची

क्र.सं	विषय	पृष्ठ
	संदेश	
i.	संरक्षक की कलम से	iii
ii.	प्रधान संपादक की कलम से	v
iii.	संपादक की कलम से	vii
	परिचय	
	भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्	3
1.	प्रशासन निदेशालय	4
2.	अनुसंधान निदेशालय	5
3.	शिक्षा निदेशालय	5
4.	विस्तार निदेशालय	5
5.	निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग)	6
	राजभाषा	
1.	भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की राजभाषा गतिविधियां	8
2.	भा.वा.अ.शि.प.– शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर की राजभाषा गतिविधियां	10
3.	भा.वा.अ.शि.प.– वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की राजभाषा गतिविधियां	11
4.	भा.व.आ.शि.प.– हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां	12
5.	भा.वा.अ.शि.प.– वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद की महत्वपूर्ण राजभाषा गतिविधियां	13
6.	भा.वा.अ.शि.प.– वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर की राजभाषा गतिविधियाँ	14
7.	भा.वा.अ.शि.प.– वन उत्पादकता संस्थान, रांची की राजभाषा गतिविधियाँ	15
8.	भा.वा.अ.शि.प.– काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू की राजभाषा गतिविधियां	16
9.	भा.वा.अ.शि.प.– उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की राजभाषा गतिविधियां	17
10.	भा.वा.अ.शि.प.– वर्षा अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियां	18

वानिकी

1. *कर्कुमा एलिस्मैटिफोलिया* गगनेप अथवा सियाम लिली: एक संक्षिप्त विवरण 20
– श्री प्रदीप कुमार हजारिका एवं श्री अंकुर ज्योति सैकिया

2. मेहल : एक महत्वपूर्ण जंगली फलदार वृक्ष 22
– डॉ. माला राठौर एवं श्री सुरेन्द्र सिंह

3. बेहमी: उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र का एक बहु-उद्देशीय वृक्ष 24
– डॉ. पीताम्बर सिंह नेगी

4. पूर्वोत्तर भारत की महत्वपूर्ण लकड़ी उत्पादक वन प्रजाति 26
– डॉ. मनीष कुमार सिंह

5. जलमग्न क्षेत्र संरक्षण हमारे पारितंत्र के लिये आवश्यक 28
– डॉ. कुमुद दुबे, श्री आशीष कुमार यादव एवं सुश्री दर्शिता रावत

6. हिमालयी हॉर्नबीम : संरक्षण, वनस्पति विज्ञान और खतरों का अध्ययन 31
– सुश्री ईनू बिदलान, सुश्री निशा एवं डॉ. संदीप शर्मा

7. रोडोडेंड्रोन का वितरण और विभिन्न उपयोग 33
– डॉ. विनोद कुमार

8. *डाईस्कोरिया डेल्टोडिया* (तरूल) एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा 35
– श्री एल. आर. लक्ष्मीकांत पण्डा

9. ठंगी: हिमालयन क्षेत्रों की एक बहुउपयोगी प्रजाति 37
– श्री शिवांशु गौतम एवं डॉ. संदीप शर्मा

10. आंध्र प्रदेश की मुख्य स्थानिक प्रजातियां और उनका संरक्षण 39
– डॉ. पंकज सिंह, सुश्री मेरी चन्दना, डॉ. स्वपनेंदु पट्टनायक, श्री के. चन्द्र प्रकाश एवं सुश्री शुभी कुल्श्रेष्ठा

11. औषधीय गुणों से भरपूर हिमालयन सरू (*कप्रेसस टोरुलोसा*) 43
– श्री पंकज कुमार, श्री विक्रम चौहान एवं डॉ. वनीत जिश्टु

12. करोंदा फल का उपयोग और लाभ 45
– डॉ. एस. सी. बिस्वास एवं डॉ. एस. एन. मिश्रा

13. कुसुम (*श्लाईचेरा ओलिओसा*) नर्सरी एवं पुनर्जनन तकनीक 47
– डॉ. प्रवीण रावत, श्री शीशराम डंगवाल, डॉ. मनीषा थपलियाल एवं डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा

14. *केरकस ग्लौका* (बानी): हिमालयी क्षेत्रों की एक महत्त्वपूर्ण चारा वृक्ष प्रजाति 49
– सुश्री यामिनी, डॉ. प्रवीण रावत, डॉ. संदीप शर्मा एवं श्री पंकज कुमार

15. महत्वपूर्ण औषधीय प्रजातिः *पेरिस पोलीफिला* (सतुवा) 51
– डॉ. स्वर्णलता, डॉ. शिव पॉल एवं डॉ. तनय बर्मन

16. *मुराया कोएनिजी* : प्रमुख सुगंधित तथा औषधीय गुणों वाला पौधा 54
– डॉ. ऋचा ठाकुर, डॉ. पी. एस नेगी एवं सुश्री प्रीतिका चौहान

17. लाख की खेती और विभिन्न औद्योगिक उत्पादों में इसका उपयोग 56
– श्री अरबिन्द डेका

18. हर्बल औषधियों का गुणवत्ता नियंत्रण 58
– डॉ. के. जी. भूटिया, डॉ. पी. एल. भूटिया एवं डॉ. सोनकेश्वर शर्मा

19. नैनो-प्रौद्योगिकी : काष्ठ विज्ञान में महत्व और अनुप्रयोग 61
– सुश्री ऋचा बंसल, डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. कृष्ण कुमार पांडेय

20. बाँस : प्रवर्धन एवं प्रबंधन 64
– श्री आलोक यादव, श्री कुलदीप चौहान एवं श्री राहुल निषाद

विविधा

1. जामुन
– डॉ. शैलेंद्र कुमार 70

2. भारतीय तुरही का पेड़
– डॉ. अश्वनी कुमार एवं श्री मनोज कुमार 72

3. सूखे के कारण, समस्याएं एवं समाधान
– श्री आशीष कुमार एवं डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल 74

4. पोषक आहारः मिलेट्स
– डॉ. ननिता बेरी, सुश्री रिंकी पटैरिया एवं श्री सुमित सिंह ठाकुर 76

5. प्रसन्न रहना सीखें
– श्रीमती रोशनी चौहान 79

6. रेशम उद्योग में रोजगार की व्यापक संभावनाएं
– डॉ. राजेश कुमार मिश्रा 81

7. हिमालयी औषधीय जड़ी-बूटियाँ: कुठ और पुष्करमूल
– श्री दुष्यन्त कुमार एवं श्रीमती शिल्पा 83

8. जंगल को बचाने वाला पेड़
– सुश्री प्रिया नगराईक 85

9. स्वस्थ जीवन संतुष्ट जीवन
– श्रीमती पूंगोदै कृष्णन 87

10. आभार
– श्री आकाश आनंद सोलंकी 89

11. वैज्ञानिक अनुसंधान प्रसार में हिंदी भाषा का उपयोगः समय की मांग
– श्री मनीष कुमार विजय 90

12. सिक्किम के महत्वपूर्ण हाई-एल्टीट्यूड आर्द्रभूमि : महत्व, खतरे और संरक्षण
– श्री प्रदीपन राय एवं डॉ. ध्रुब ज्योतिदास 92

13. साल वनों का द्वीप: बस्तर
– श्री सौरभ दुबे, श्री नाहर सिंह मावई, श्री शशिकिरण बर्वे एवं श्री आनंद कुमार 95

लालित्य

1. धरती की गरिमा
– श्री बिष्णु देव पण्डित 98

2. कब तक
– श्रीमती सुधा पाण्डेय 98

3. वृक्ष
– श्री संदीप चक्रवर्ती 99

4. बेसहारा मां बाप
– श्री आशीष सिंह बिष्ट 99

5. बढ़ते दौर में बढ़ाते कदम
– श्री अभिषेक खन्ना 100

6. गुरू की महिमा महान
– श्रीमती सीमा ठाकुर 101

7. वो पिता ही तो है
– सुश्री दीक्षा वर्मा 102

लेखक परिचय 103

परिचय

छायाचित्र आभार: जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

वानिकी अनुसंधान की यात्रा की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत में वैज्ञानिक वानिकी के आगमन और 1878 में देहरादून में वन विद्यालय की स्थापना के साथ हुई थी। बाद में 5 जून 1906 को देश में वानिकी अनुसंधान को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से तत्कालीन शासन द्वारा इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई। इसके पश्चात देश के वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार आवश्यकताओं व पर्यावरण हितों को देखते हुए 1986 में एक छत्र संगठन के रूप में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.) की स्थापना की गई। भा.वा.अ.शि.प. को 1 जून 1991 को तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त परिषद् घोषित किया गया और सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के तहत एक सोसाइटी के रूप में पंजीकृत किया गया।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् सोसाइटी की आम सभा, भा.वा.अ.शि.प. की सर्वोच्च प्राधिकारी है, जिसके प्रमुख, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के केंद्रीय मंत्री होते हैं। परिषद् के महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. सोसाइटी के मुख्य कार्यकारी होते हैं।

भा.वा.अ.शि.प. का मुख्यालय उत्तराखंड राज्य की राजधानी देहरादून में है। परिषद्, राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान प्रणाली में एक सर्वोच्च निकाय है। यह परिषद् वानिकी अनुसंधान, वानिकी शिक्षा एवं विस्तार हेतु समर्पित है। परिषद के अंतर्गत देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में 9 अनुसंधान संस्थान और 5 केंद्र कार्यरत हैं। इनमें से प्रत्येक संस्थान का अपना खुद का एक इतिहास है और ये अनुसंधान संस्थान अपने क्षेत्र की विशेष भौगोलिक उपस्थिति में उपजी वानिकी पर शोध के लिए पारंगत हैं तथा भा.वा.अ.शि.प. के छत्र तले अपने क्षेत्राधिकार में वानिकी क्षेत्र में अनुसंधान, विस्तार और शिक्षा का निर्देशन और प्रबंधन कर रहे हैं। ये क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान जोधपुर, देहरादून, शिमला, हैदराबाद, कोयम्बत्तूर, रांची, बेंगलुरू, जोरहाट एवं जबलपुर में स्थित हैं। इनसे संबंधित अनुसंधान केंद्र अगरतला, आइजॉल, प्रयागराज, छिंदवाड़ा और विशाखापत्तनम् में स्थित हैं।

संकल्पना : वन पारितंत्र के संरक्षण और वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से दीर्घकालिक पारिस्थितिक स्थिरता, संवहनीय विकास और आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करना।

लक्ष्य : वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा के माध्यम से पारिस्थितिक सुरक्षा, बेहतर उत्पादकता, आजीविका संवर्धन और वन संसाधनों के संवहनीय उपयोग हेतु वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकियों को सृजित, उन्नत और प्रसारित करना।

भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय में अनुसंधान एवं परियोजनाओं से संबंधित कार्यों को सुचारु रूप से परिचालित करने हेतु निदेशालयों की स्थापना की गयी है। इन निदेशालयों के प्रमुख उप महानिदेशक होते हैं जो संबंधित विषयों के बारे में महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. को सलाह प्रदान करते हैं। मुख्यालय स्थित विभिन्न निदेशालयों का परिचय निम्नलिखित है।

1. प्रशासन निदेशालय

प्रशासन निदेशालय के प्रमुख उप महानिदेशक (प्रशासन) होते हैं। निदेशालय परिषद् के बजट संबंधित मामलों, भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं की अधिप्राप्ति तथा पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली के सम्मुख प्रस्तुत करने हेतु परिषद् की मांग एवं व्यय का संकलन संबंधित मामलों को देखता है।

निदेशालय तीन प्रशासनिक प्रभागों यथा सामान्य प्रशासन प्रभाग एवं वित्त जिसके प्रमुख सहायक महानिदेशक (प्रशासन) होते हैं, सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग तथा वानिकी सांख्यिकी प्रभाग, का संचालन करता है।

प्रशासनिक कार्य को मुख्य रूप से 7 अनुभागों में विभाजित किया गया है यथा आहरण एवं संवितरण, बजट, भंडार अनुभाग, सामान्य प्रशासन एवं निर्माण कार्य, अधिप्राप्ति, वाहनों का रख-रखाव तथा वन विज्ञान भवन, नई दिल्ली का पर्यवेक्षण। प्रशासन निदेशालय के दो प्रमुख प्रभाग निम्नानुसार हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग

भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय में सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग अनुसंधान, प्रशासनिक और अन्य गतिविधियों को सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्ष 2022-23 के दौरान की गईं नई पहलें निम्न हैः

1. भा.वा.अ.शि.प. भर्ती पोर्टल का कार्यान्वयन:

सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग द्वारा नया भर्ती पोर्टल शुरू किया गया है और इसका एक मोबाइल एप्लीकेशन भी विकसित किया गया है।

2. भा.वा.अ.शि.प.डाटा सेंटर (सर्वर फार्म)

भा.वा.अ.शि.प. डेटा सेंटर सेवाएं दिनांक 01.02.2010 से भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय तथा देश भर में फैले भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों और केंद्रों पर 24*7*365 उपलब्ध हैं। डेटा सेंटर द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ सेवाएँ मेल, इंटरनेट, वेब, वीडियो-कांफ्रेंसिंग, एंटीवायरस, एफ़टीपी, नेटवर्क सुरक्षा प्रणाली, डेटाबेस, बिल्डिंग मैनेजमेंट सिस्टम (बीएमएस), वर्चुअल प्राइवेट नेटवर्क (वीपीएन) सेवाएँ, पुश मेल सेवा, वेब कास्टिंग आदि हैं। डेटा सेंटर पर 71 वेब एप्लिकेशन/वेबसाइट होस्ट की गई हैं। कुल 1830 सक्रिय ई-मेल खाते मेल सर्वर पर उपलब्ध हैं।

यह प्रभाग लगभग 60 वेबसाइटों/डाटाबेस/सीएमएस/एप्लीकेशन जिनमें भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों के एप्लीकेशन और वेबसाइटें भी शामिल हैं, और लाइव सर्वर पर हैं, का भी अनुरक्षण करता है।

प्रभाग द्वारा वर्ष के दौरान भा.वा.अ.शि.प.-उ.व.अ.सं., जबलपुर, भा.वा.अ.शि.प.- व.व.अ.सं., जोरहाट, तथा भा.वा.अ.शि.प.- व.जै.सं., हैदराबाद की हिंदी वेबसाइट और भा.वा.अ.शि.प.-व.आ.वृ.प्र.सं., कोयंबटूर की अंग्रेजी वेबसाइट अभिकल्पित और विकसित की गई। इसके अलावा प्रभाग द्वारा भा.वा.अ.शि.प. की वेबसाइटों

(http://icfre.gov.in और https://hindi.icfre.gov.in) को तुरंत अद्यतित किया जाता है। 1 अप्रैल 2022 से 31 मार्च 2023 के दौरान भा.वा.अ.शि.प. की अंग्रेजी और हिंदी वेबसाइटों में कुल 1689 अद्यतन किए गए।

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग, प्रशासन निदेशालय के अर्न्तगत आता है। जिसका उद्देश्य वानिकी डाटा का मूल्यांकन तथा विश्लेषण करना है।

2. अनुसंधान निदेशालय

अनुसंधान निदेशालय के प्रमुख उप महानिदेशक (अनुसंधान) होते हैं और दो सहायक महानिदेशक (अनुसंधान योजना), सहायक महानिदेशक (अनुश्रवण एवं मूल्यांकन) और अन्य वैज्ञानिक उनकी सहायता करते हैं। निदेशालय सुनिश्चित करता है कि भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों द्वारा निष्पादित सभी अनुसंधान परियोजनाएं आवश्यकता आधारित और क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान समस्या को संबोधित करने वाली हों।

वर्ष 2022-23 के दौरान निदेशालय द्वारा आयोजित की गयी अनुसंधान सलाहकार समूह (आरएजी) और अनुसंधान योजना समिति (आरपीसी) की बैठकों का विवरण इस प्रकार है:

भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों की अनुसंधान सलाहकार समूह की बैठकें 19 सितंबर से 15 नवंबर 2022 के बीच आयोजित की गयी।

भा.वा.अ.शि.प. की तेईसवीं (XXIII) अनुसंधान योजना समिति 13 और 14 फरवरी 2023 को आयोजित की गयी। तेईसवीं अनुसंधान योजना समिति ने 23 नए अनुसंधान परियोजनाओं को मंजूरी दी तथा 58 वर्तमान अनुसंधान परियोजनाओं की प्रगति की समीक्षा की।

3. शिक्षा निदेशालय

शिक्षा निदेशालय मुख्य रूप से वानिकी शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों में उच्च शैक्षणिक मानकों के लिए देश में वानिकी शिक्षा को बढ़ावा देने, समन्वय करने और सहायता करने, विभिन्न घरेलू एवं विदेशी प्रशिक्षणों का संचालन एवं समन्वयन कर परिषद में कार्यरत वैज्ञानिकों, तकनीकी, कार्यकारी एवं अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम चलाने, वन और पर्यावरण के क्षेत्र में नीति निर्माण करने और नीति निर्माताओं के लिए इनपुट प्रदान करने तथा परिषद के तकनीकी संवर्ग के श्रेणी-3 कर्मियों और वैज्ञानिकों की भर्ती और पदोन्नति करने के लिए अधिदेशित है।

इस वर्ष मानव संसाधन विकास योजना के तहत शिक्षा निदेशालय द्वारा कुल 17 प्रशिक्षण आयोजित किए गए। इसमें 72 वैज्ञानिकों और 105 तकनीकी अधिकारियों के लिए 6 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। प्रशासनिक स्तर के 109 कर्मचारियों के लिए तीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। इसके अलावा, प्रशासनिक कर्मचारियों और कार्यकारी कर्मचारियों, प्रत्येक के लिए एक-एक, प्रेरण प्रशिक्षण आयोजित किए गए।

इसके साथ ही आईजीओटी पोर्टल पर वानिकी ई-लर्निंग मॉड्यूल प्रकाशित करके भारत सरकार के मिशन कर्मयोगी के अंतर्गत उपलब्ध कराया गया है।

4. विस्तार निदेशालय

विस्तार निदेशालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के संस्थानों और केंद्रों की विभिन्न तरह की विस्तार गतिविधियों का समन्वय और विस्तार कार्यनीतियों का विकास करता है। यह पर्यावरण प्रबंधन के क्षेत्र में भी सक्रिय भूमिका निभाता है और विभिन्न संस्थानों को पर्यावरण प्रबंधन से जुड़ी परामर्श सेवाएं प्रदान करता है। निदेशालय अपने दो प्रभागों, मीडिया एवं विस्तार प्रभाग तथा पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग की मदद से नियत लक्ष्य समूहों, राज्य वन विभागों, उद्योगों, शिल्पकारों, आदि के लिए उपयुक्त मॉडलों सहित प्रौद्योगिकी पैकेज हस्तांतरित करने हेतु प्रयासरत रहता है।

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार गतिविधियों का समन्वय एवं मूल्यांकन करता है। इसके साथ ही प्रभाग द्वारा अनुश्रवण एवं योजना का कार्य भी किया जाता है। परिषद् का वार्षिक प्रतिवेदन एवं इसका हिंदी अनुवाद, मासिक न्यूजलेटर, मासिक वानिकी समाचार, त्रैमासिक राजभाषा रिपोर्ट, मासिक मानिटरन, वार्षिक राजभाषा पत्रिका तरूचिंतन तथा अन्य प्रकाशनों का कार्य भी प्रभाग द्वारा किया जाता है। यह प्रभाग राजभाषा से संबंधित गतिविधियों यथा राजभाषा क्रियान्वयन, हिंदी कार्यशालाओं, हिंदी पखवाड़ा एवं विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन, राजभाषा पुरस्कारों का निर्णय एवं राजभाषा हिंदी से जुड़ी विभिन्न रिपोर्टों का संकलन एवं संपादन का कार्य भी करता है।

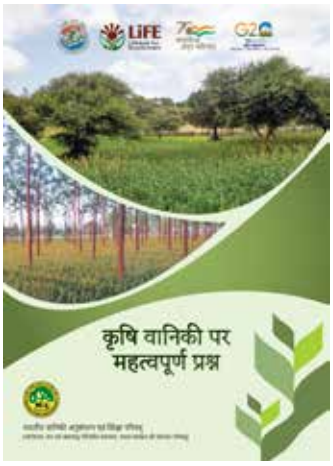

इस वर्ष मीडिया एवं विस्तार प्रभाग द्वारा 'कृषि वानिकी पर महत्वपूर्ण प्रश्न' नाम से हिंदी एवं अंग्रेजी में एक पुस्तक प्रकाशित की गयी जो कृषि वानिकी करने वाले किसानों के लिए अत्यंत लाभप्रद है।

पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग

यह प्रभाग पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं से संबंधित परियोजनाओं के तहत वैज्ञानिक परामर्श सेवाएं प्रदान करता है। यह सेवाएं देश में विभिन्न हितधारकों जैसे पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार,कर्नाटक सरकार, राज्य वन विभाग, छत्तीसगढ़ सरकार, एनटीपीसी लिमिटेड, नोएडा, कोल इण्डिया लिमिटेड, कोलकाता, वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड, महाराष्ट्र, जे एस डब्ल्यू इनर्जी लिमिटेड, एन एम डी सी, बछेली कॉम्पलैक्स, उड़ीसा वन विभाग इत्यादि को प्रदान की जाती हैं।

5. निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग)

निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों से वानिकी अनुसंधान पर सहयोग हेतु संपर्क एवं समझौता ज्ञापनो पर हस्ताक्षर करने, भा.वा.अ.शि.प. में क्षेत्रवार विशेषज्ञों की पहचान करने तथा भावी निधिकरण अभिकरणों के साथ विषय और थ्रस्ट एरिया आधारित परियोजनाओं का निर्माण और कार्यान्वयन समन्वय करने, बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित मुद्दों पर कार्यशाला, संगोष्ठी और सम्मेलन जैसे कार्यक्रमों को संचालित करने, संबंधित निधिकरण अभिकरणों से बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के प्रस्तुतीकरण एवं अनुमोदन का समन्वय, निधिकरण अभिकरण के मापदंडों/मानकों के अनुरूप बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं की प्रगति की निगरानी करने तथा परिचालन में बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के आंकड़ों को संभालने के कार्य हेतु अधिदेशित है।

भूमि क्षरण से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने के लक्ष्य के साथ निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) के अंतर्गत भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद में सतत भूमि प्रबंधन पर उत्कृष्टता केंद्र (सीओई-एसएलएम) की स्थापना की गई है। केंद्र का औपचारिक उद्घाटन 20 मई, 2023 को भा.वा.अ.शि.प., देहरादून में माननीय केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्री श्री भूपेन्द्र यादव द्वारा किया गया।

राजभाषा

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (मुख्यालय) की राजभाषा गतिविधियां

हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् एवं इसके अधीन संस्थानों में विभिन्न राजभाषा गतिविधियां संचालित की जाती है। भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय एवं इसके संस्थानों की वर्ष 2023 की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां निम्नलिखित हैं।

परिषद मुख्यालय में दिनांक 14 सितंबर 2023 को हिंदी दिवस मनाया गया एवं साथ ही हिंदी पखवाड़े का शुभारंभ किया गया। माननीय गृह मंत्री श्री अमित शाह की अध्यक्षता में पुणे, महाराष्ट्र में हिंदी दिवस के शुभारंभ के साथ ही श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. ने परिषद् में हिंदी पखवाड़े का समारंभ किया जिसमें भा.वा.अ.शि.प. के समस्त अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री अरूण सिंह रावत ने गत वर्ष की राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन के क्षेत्र में हुई प्रगति पर चर्चा की एवं राजभाषा हिंदी के निरंतर प्रयोग हेतु प्रतिबद्धता जताई।

हिंदी पखवाड़े का समापन समारोह दिनांक 27 सितम्बर 2023 को आयोजित किया गया। इस अवसर पर श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून मुख्य अतिथि थे। इस मौके पर महानिदेशक महोदय ने विगत वर्षों में परिषद में हिंदी में कामकाज में हुई सराहनीय वृद्धि पर प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने बताया कि भा.वा.अ.शि.प. के 'ग' क्षेत्र स्थित सभी संस्थानों ने राजभाषा के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया है। महानिदेशक महोदय ने राजभाषा हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने हेतु परिषद् के 'क' क्षेत्र स्थित संस्थानों में भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला एवं 'ग' क्षेत्र स्थित संस्थानों में भा.वा.अ.शि.प.- वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर को पुरस्कार प्रदान किया। साथ ही भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कारों के अंतर्गत वर्ष 2022-23 के दौरान अपने शासकीय कार्यों में हिन्दी के क्रियान्वयन में समग्र प्रदर्शन हेतु भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय के 09 कार्मिकों एवं 03 संविदाकर्मियों को भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया गया। महानिदेशक महोदय ने परिषद में पखवाड़े के दौरान होने वाली विभिन्न प्रतियोगिताओं में कार्मिकों की भागीदारी की सराहना की और पखवाड़े के दौरान आयोजित हुई नौ प्रतियोगिताओं के 49 विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए। इस अवसर पर हिंदी के कार्यान्वयन में उत्तरोत्तर प्रगति में महानिदेशक महोदय के मार्गदर्शन एवं योगदान के लिए हिंदी प्रकोष्ठ की तरफ से डॉ. सुधीर कुमार, उपमहानिदेशक (विस्तार) द्वारा सम्मान स्वरूप शॉल ओढ़ाकर सम्मानित किया गया।

डॉ. सुधीर कुमार, उपमहानिदेशक (विस्तार) ने स्वागत भाषण के दौरान राजभाषा हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इस वर्ष हिन्दी पखवाड़ा के दौरान कुल 9 प्रतियोगिताएं यथा, टिप्पण लेखन, शब्द संधान, निबंध, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद, वाद-विवाद, राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी, कम्प्यूटर पर हिंदी टंकण, अंत्याक्षरी एवं स्वरचित हिन्दी काव्यपाठ आयोजित की गईं, जिनमें कुल 98 प्रतिभागियों ने अत्यंत उत्साह से भाग लिया।

राजभाषा हिंदी में लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए परिषद प्रत्येक वर्ष हिन्दी पत्रिका तरूचिंतन का प्रकाशन करती है। तरूचिंतन का प्रकाशन वर्ष 2009 से लगातार हो रहा है और इस साल 2023 में इसका 15वां अंक प्रकाशित हो रहा है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में परिषद् के संस्थानों में कुल 04 अन्य हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा है। हिंदी में कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए समय-समय पर विभिन्न पुस्तकों/जर्नलों का भी प्रकाशन किया जाता है। इस वर्ष "कृषिवानिकी पर महत्वपूर्ण प्रश्न" नाम से एक महत्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन किया गया जो कृषिवानिकी करने वाले किसानों के लिए अत्यंत लाभदायक है।

कार्यालयीन प्रयोग में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने हेतु मुख्यालय एवं संस्थानों में प्रत्येक तिमाही में राजभाषा हिंदी कार्यशालाएं आयोजित की जाती है। वर्ष 2023 के दौरान मुख्यालय एवं संस्थानों में कुल 19 कार्यशालाएं आयोजित की गयीं जिनमें 96 अधिकारी एवं 383 कर्मचारी प्रशिक्षित किए गए।

हिंदी के सुचारू कार्यान्वयन हेतु मुख्यालय एवं संस्थानों में नियमित तौर पर त्रैमासिक रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें आयोजित की जाती है। वर्ष 2023 के दौरान मुख्यालय एवं संस्थानों में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की कुल 29 बैठकें आयोजित की गयीं। वर्ष के दौरान परिषद् मुख्यालय ने हिंदी सलाहकार समिति की दो बैठकों में हिस्सा लिया तथा पुणे, महाराष्ट्र में आयोजित हिंदी दिवस तथा तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में भी भाग लिया।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प. – शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में दिनांक 14-20 सितंबर, 2023 को हिन्दी सप्ताह का आरंभ हुआ। शु.व.अ.सं., जोधपुर में हिन्दी सप्ताह व हिन्दी दिवस आयोजन का शुभारंभ पुणे, महाराष्ट्र में आयोजित हो रहे 'हिन्दी दिवस एवं तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' के आरंभ के साथ हुआ।

'हिन्दी दिवस' के दिन अपराह्न समय हुए आयोजन में संस्थान के कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी, श्री अजय वशिष्ठ ने संस्थान के सभागार में एकत्र हुए सभी के समक्ष माननीय मंत्री एवं राज्य मंत्री जी पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के संदेश एवं संयुक्त सचिव एवं राजभाषा प्रभारी जी की ओर से जारी अपील का वाचन किया गया। इसके बाद संस्थान के समूह समन्वयक (शोध) एवं वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. तरुण कान्त ने संस्थान निदेशक श्री माना राम बालोच, भा.व.से. द्वारा हिन्दी दिवस पर जारी अपील को सभी के समक्ष पढ़ कर सुनाया। डॉ. तरुण कान्त ने सभी को हिन्दी दिवस की शुभकामनाएँ दी। अंत में कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी, श्री अजय वशिष्ठ ने हिन्दी सप्ताह के दौरान आयोजित होने वाली विभिन्न प्रतियोगिताओं की संक्षिप्त जानकारी दी। हिन्दी सप्ताह–2023 के दौरान हिन्दी टंकण (सामान्य व यूनिकोड), हिन्दी ज्ञान, हिन्दी टिप्पण तथा आलेखन, हिन्दी निबंध, तथा स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिताएं आयोजित हुईं जिनमें कार्मिकों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया।

भा.वा.अ.शि.प.–शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में दिनांक 20 सितंम्बर, 2023 को संस्थान में चल रहे 'हिन्दी सप्ताह' का समापन समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर जोधपुर की स्वतंत्र लेखिका, वक्ता एवं कवयित्री डॉ. पद्मजा शर्मा मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया, साथ ही श्री सत्यदेव संवितेंद्र, कवि तथा श्रीमती दीपा चौहान, स्वतंत्र लेखिका, वक्ता व कवयित्री विशिष्ट अतिथि रहे। स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिता आयोजित कराई गयी जिसमें संस्थान के कार्मिकों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। कार्यक्रम में संस्थान के सहायक निदेशक (राजभाषा), श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने संस्थान की राजभाषा हिन्दी की वार्षिक प्रगति रिपोर्ट (2022-23) सभी के समक्ष प्रस्तुत की तथा हिन्दी सप्ताह के आयोजन के प्रयोजन पर प्रकाश डाला एवं सरकारी कामकाज में सरल हिन्दी के प्रयोग को लेकर अपनी बात रखी ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भा.वा.अ.शि.प. – शुष्क वन अनुसंधान संस्थान,जोधपुर में नियमित रूप से विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें आयोजित की गयीं तथा समय – समय पर हिन्दी कार्यशालाएँ भी आयोजित की गयीं। संस्थान में आजादी के अमृत महोत्सव के अंतर्गत विस्तार प्रभाग द्वारा अधिकांश गतिविधियां हिन्दी माध्यम में आयोजित हुईं व संस्थान की हिन्दी शोध पत्रिका 'आफरी दर्पण' एवं अन्य विभिन्न सामग्री हिन्दी में प्रकाशित की गयी। नराकास- 2, जोधपुर की बैठकों तथा 'हिन्दी दिवस एवं तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' में संस्थान द्वारा सहभागिता की गई।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की राजभाषा गतिविधियां

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा हिन्दी से संबन्धित अधिनियमों/नियमों का अनुपालन किया जाता है तथा संस्थान हिन्दी के प्रचार-प्रसार में निरंतर अग्रसर है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय से प्राप्त विभिन्न दिशा-निर्देशों का क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाता है। इसी क्रम में वर्ष 2023 के अंतर्गत निम्न प्रमुख गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है:

हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशालाएं: संस्थान में 29 मई से 2 जून 2023 तक 'यूनिकोड हिन्दी टाइपिंग' विषय पर पाँच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया था। इस प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद तथा वन अनुसंधान संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में किया गया।

दिनांक 23 अगस्त, 2023 को संसदीय राजभाषा समिति निरीक्षण प्रश्नावली पर एक दिवसीय हिंदी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में व्याख्यान देने के लिए श्री महिमानंद भट्ट, पूर्व प्रबंधक (राजभाषा), केन्द्रीय भंडारण निगम को आमंत्रित किया गया था।

हिंदी पखवाड़ा, 2023: संस्थान में दिनांक 14 से 29 सितंबर, 2023 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। संस्थान में आयोजित हिंदी पखवाड़े के दौरान हिंदी श्रुतलेख, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, हिंदी टंकण तथा काव्य पाठ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के दौरान डॉ. रेनू सिंह, निदेशक भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान महोदया के कर-कमलों से सभी विजेता प्रतिभागियों को प्रशस्ति पत्र एवं नगद पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके साथ ही दिनांक 14 एवं 15 सितंबर, 2023 को पुणे, महाराष्ट्र में केंद्रीय स्तर पर आयोजित तृतीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन के समारोह में संस्थान से श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) प्रतिभागी के रूप में शामिल हुए।

इसके अतिरिक्त, वर्ष 2022-23 के दौरान राजभाषा हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए संस्थान के अनुसंधान तथा प्रशासनिक कार्यालयों को पुरस्कृत किया गया। इस श्रेणी में वन पुस्तकालय एवं सूचना केंद्र, वन अनुसंधान संस्थान सम विश्वविद्यालय, नव वन चिकित्सालय तथा वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग को शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किए गए।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक: राजभाषा कार्यान्वयन में लक्ष्य प्राप्ति को सुनिश्चित करने और लक्ष्यों को बनाए रखने के लिए वन अनुसंधान संस्थान में नियमित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का आयोजन किया जाता है। समिति की तिमाही बैठकें क्रमशः 17 मार्च, 2023, 23 जून, 2023 तथा 29 सितंबर, 2023 को आयोजित की गई।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.व.आ.शि.प. – हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान भारत सरकार द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुरूप लगभग 100% कार्य हिन्दी में निष्पादित कर रहा है। पिछले दो तिमाहियों में राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) व राजभाषा नियम-5 के तहत क, ख एवं ग क्षेत्रों में पत्राचार, कार्यालय आदेश, नोटिंग इत्यादि हिन्दी व द्विभाषीय माध्यम से ही किए गए।

हिन्दी के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए अप्रैल - जून, 2023 छमाही में एक दिवसीय दो कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। प्रथम कार्यशाला का आयोजन दिनांक 16.06.2023 को किया गया जिसमें डॉ. भवानी सिंह ने "राजभाषा हिन्दी का विकास एवं उपयोगिता" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत करते हुये कार्यालयी काम काज में हिन्दी के प्रयोग के महत्व को उजागर किया। दूसरी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 16.06.2023 को किया गया जिसमें डॉ पंकज ललित, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश ने राजभाषा हिन्दी का इतिहास, विकास एवं वर्तमान स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला।

संस्थान में 14.09.2023 को हिन्दी दिवस मनाया गया तथा निदेशक (प्रभारी) डॉ. संदीप शर्मा, द्वारा हिन्दी पखवाड़ा का शुभारंभ किया गया। इस अवसर पर उन्होनें अपने सम्बोधन में हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डाला एवं सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा के रूप मे परिभाषित किया। राजभाषा के प्रचार-प्रसार व इसकी उपयोगिता को बढ़ाने के लिए भारत सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों के बारे में भी सभी को अवगत करवाया। संस्थान द्वारा इस अवसर पर विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

इसी कड़ी में संस्थान द्वारा 29.09.2023 को हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता संस्थान के निदेशक (प्रभारी), डॉ. संदीप शर्मा द्वारा की गई। मुख्य अतिथि डॉ पंकज ललित, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश ने हिन्दी में कार्य करने व उत्तरोत्तर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतिबद्ध रहने हेतु सभी को प्रेरित किया। हिन्दी पखवाड़ा के समापन समारोह के अंतिम चरण में पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगताओं के विजेताओं को संस्थान के निदेशक, डॉ. संदीप शर्मा व विशेष अतिथि डॉ. पंकज ललित द्वारा पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया। वित्त-वर्ष 2022-23 में संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए श्री गुलेर सिंह, प्रवर श्रेणी लिपिक को प्रथम, श्री सुंदर श्याम, तक० को द्वितीय तथा श्री विपिन कुमार, तक० को तृतीय पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया ।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद की महत्वपूर्ण राजभाषा गतिविधियां

कर्मचारियों हेतु हिन्दी प्रशिक्षणः भा.वा.अ.शि.प.- वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा हिन्दी के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में चर्चा की गयी एवं उसमें सुधार कर लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु संस्थान के कर्मचारियों को प्राज्ञ, प्रबोध एवं पारंगत पाठ्यक्रमों तथा टंकण प्रशिक्षण हेतु नामित किया गया।

हिन्दी सप्ताह का आयोजनः संस्थान में 04 से 11 सितंबर, 2023 तक हिंदी सप्ताह मनाया गया। इस दौरान संस्थान में हिंदी की तीन प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं। श्रीमती भारती पटेल, वैज्ञानिक– बी एवं हिंदी प्रभारी ने हिंदी सप्ताह के दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं का संचालन किया। इस अवसर पर श्री ई. वेण्कट रेड्डी, भा.व.से., निदेशक महोदय द्वारा प्रतियोगिताओं के पुरस्कार वितरण किये गये।

पहली प्रतियोगिता, रिक्त स्थानों की पूर्ति करना, में श्रीमती शुभी कुलश्रेष्ठ, वरिष्ठ तकनीशियन ने प्रथम स्थान, श्रीमती टी. अनुषा, तकनीशियन एवं श्री छोटू कुमार यादव, कार्यालय परिचारक दोनों ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया और श्री श्रीनिवास ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। दूसरी प्रतियोगिता, निम्नलिखित को जोड़ें, में श्रीमती शुभी कुलश्रेष्ठ, वरिष्ठ तकनीशियन, ने प्रथम स्थान, श्री एम. गणेश, तकनीकी सहायक ने द्वितीय स्थान और श्री. छोटू कुमार यादव, कार्यालय परिचारक ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। तीसरी प्रतियोगिता बहुविकल्पीय प्रश्न में श्रीमती शुभी कुलश्रेष्ठ, वरिष्ठ तकनीशियन ने प्रथम स्थान, सुश्री. ए जस्मीन, कनिष्ठ परियोजना अध्येता ने द्वितीय स्थान और अंसारूल हक़ ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त गत वर्ष में हिंदी के प्रचार- प्रसार हेतु जिन कर्मचारियों ने अपना योगदान दिया उनको प्रशस्ति पत्र से पुरस्कृत किया गया जिसमें तीनों कर्मचारी श्री. वरुण सिंह, तकनीशियन श्री. जी. विनय गौड़, तकनीशियन और श्री. ई मणिकान्ता रेड्डी, तकनीशियन के द्वारा किये गए कार्यों के निष्पादन को सराहा गया।

इस अवसर पर श्री ई. वेण्कट रेड्डी, भा.व.से., कार्यालय प्रमुख महोदय ने अपने विचार व्यक्त किये और संस्थान में निष्पादन हेतु सुझाव दिये। डॉ॰ पंकज सिंह, वैज्ञानिक – सी ने भी अपने विचारों को व्यक्त किया जिसके पश्चात श्रीमती भारती पटेल, वैज्ञानिक– बी ने सभा गोष्ठी का धन्यवाद ज्ञापन किया।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.आ.अ.शि.प – वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयंबत्तूर राजभाषा के प्रचार-प्रसार में निरंतर प्रयासरत है। संस्थान में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में नियमित रुप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैठक का आयोजन किया जाता है।

14 मार्च 2023 को "दिन-प्रति-दिन के कार्यों में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग" विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के विभिन्न विभागों से 25 अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला के विषय पर विस्तार से चर्चा करने के लिए डॉ.पि. बालमुरुगन, वरिष्ठ प्रबन्धक (राजभाषा), बैंक ऑफ बड़ौदा, कोयम्बत्तूर को आमंत्रित किया गया था। मुख्य अथिति ने सभी कर्मचारियों से प्रतिदिन के कार्य में राजभाषा का प्रयोग करने में होने वाली व्यवहारिक समस्याओं के बारे में चर्चा की। उन्होंने कहा कि तमिलनाडु जैसे हिन्दीतर क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग करना कठिन है लेकिन फिर भी जहाँ तक हो सके राजभाषा का प्रयोग कर अपने कर्तव्य को निभाना चाहिये और राजभाषा विभाग द्वारा दिये गये लक्ष्य को प्राप्त करने में अपना सहयोग देना चाहिए। राजभाषा के प्रयोग को सरल बनाने के लिए राजभाषा विभाग द्वारा विकसित लीला प्रवाह एप और ई-महाशब्दकोश का उपयोग कर सकते है।

संस्थान में 14-29 सितम्बर 2023 को हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़ा समारोह के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें हिन्दी अंताक्षरी प्रतियोगिता, हिन्दी पत्र अनुवाद प्रतियोगिता, हिन्दी शब्दों का व्यवस्थीकरण प्रतियोगिता आदि शामिल थे। इन प्रतियोगिताओं में सभी कर्मचारियों ने उमंग-उत्साह से भाग लिया।

29 सितंबर को हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर डॉ.एस.एस. रेश्मी, एसोसिएट प्रोफेसर, श्री नारायणगुरु कॉलेज, कोयम्बत्तूर मुख्य अतिथि थे। इस अवसर पर विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को मुख्य अथिति द्वारा प्रमाणपत्र एवं पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया गया और सभी सहभागिताओं को भी प्रमाणपत्र देकर उन्हें प्रोत्साहित किया गया।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – वन उत्पादकता संस्थान, रांची की राजभाषा गतिविधियाँ

राजभाषा संबंधी संवैधानिक व्यवस्थाओं का अनुपालन एवं संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति को प्रमुखता देते हुए राजभाषा हिन्दी के समग्र प्रयोग और प्रचार-प्रसार हेतु दिनांक 14 से 29 सितंबर 2023 तक भा.वा.अ.शि.प- वन उत्पादकता संस्थान, रांची में निदेशक एवं राजभाषा प्रकोष्ठ के अध्यक्ष, डॉ. अमित पांडेय के नेतृत्व में हिंदी पखवाड़ा का आयोजन किया गया।

14 सितंबर 2023 को समूह समंवयक अनुसंधान, डॉ. योगेश्वर मिश्रा के मार्गदर्शन में राजभाषा प्रतिज्ञा के साथ पखवाड़ा की शुरुआत की गई, जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सक्रिय सहभागिता रही। पखवाड़ा के दौरान संस्थान में टिप्पण एवं पत्राचार प्रतियोगिता, तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता, निबंध लेखन प्रतियोगिता, स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिता और प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के प्रतिभागियों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया एवं उत्कृष्ट प्रदर्शन किया।

दिनांक 29 सितंबर 2023 को निदेशक, डॉ. अमित पांडेय की अध्यक्षता में हिंदी पखवाड़ा का समापन समारोह आयोजित किया गया। समारोह का संचालन करते हुए श्रीमती रूबी सुसाना कुजूर ने सर्वप्रथम संस्थान द्वारा हिंदी में किए जा रहे कार्यकलापों की वर्तमान स्थिति का विस्तारपूर्वक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम को संबोधित करते हुए समूह समन्वयक अनुसंधान, डॉ. योगेश्वर मिश्रा ने संस्थान द्वारा सतत प्रयास एवं आपसी सहयोग द्वारा हिंदी में सरकारी कार्यकलापों और प्रयासों की सराहना की और कहा कि गृह मंत्रालय द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूर्ण करने हेतु संस्थान प्रतिबद्ध है और नियमित रूप से प्रयासरत रहेगा।

निदेशक एवं राजभाषा प्रकोष्ठ के अध्यक्ष, डॉ. अमित पांडेय ने संस्थान द्वारा हिंदी में सम्पादित किए जा रहे कार्यों की सराहना करते हुए कहा कि सौ प्रतिशत पत्राचार/टिप्पण हमारा लक्ष्य है। उन्होंने कहा कि हिंदी भाषा में जब मातृ शब्द जुड़ जाता है तो यह और भी खास हो जाता है और मातृभाषा से बढ़कर दुनिया में कोई भाषा नहीं हो सकती। उन्होंने उम्मीद जताई कि अगले पखवाड़ा में हिंदीतर भाषी अधिकारी/कर्मचारी भी हिंदी में कविता पाठ करेंगे और हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करते रहेंगे।

समापन समारोह के अंत में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागियों को निदेशक, समूह समन्वयक अनुसंधान, डॉ. शरद तिवारी और डॉ. एच.एस.गुप्ता द्वारा पुरस्कार और प्रमाण पत्र वितरण कर प्रोत्साहित किया गया। श्रीमती रूबी सुसाना कुजूर के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हिंदी पखवाड़ा का समापन किया गया।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू की राजभाषा गतिविधियां

संस्थान में 14 सितंबर से 28 सितंबर 2023 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन किया गया जिसका उद्‌घाटन दिनांक 14 सितंबर 2023 को किया गया तथा समापन समारोह 29 सितंबर 2023 को हुआ था। इस समारोह मे विभिन्न प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारीगण एवं कर्मचारीवृन्द ने बड़ी तन्मयता से भाग लिया।

उद्‌घाटन समारोह में संस्थान के अधिकारीगण एवं कर्मचारीवृन्द ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. एम. पी. सिंह, भा.व.से, डब्ल्यूपीपी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. शक्ति सिंह चौहान, वैज्ञानिक-जी, डॉ. मनोज कुमार दूबे, वैज्ञानिक-एफ, हिन्दी कक्ष के प्रभारी अधिकारी एवं हिन्दी पखवाडा आयोजन समिति के अध्यक्ष श्री पी. पुरुषोत्तम, भा.व.से. ने राजभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार हेतु अपने विचार व्यक्त किए। संस्थान के निदेशक डॉ. एम. पी. सिंह, भा.व.से ने अपने संबोधन में सभी अधिकारी एवं कर्मचारियों से राजभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में यथासंभव सहयोग हेतु अनुरोध किया। संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा करते हुए निदेशक महोदय ने सभी कर्मचारियों से हिन्दी में काम करने का अनुरोध किया।

समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रुप में डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी ने समारोह का उद्‌घाटन किया। अंतिम चरण में डॉ. मुकुल भूषण सिंह, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने धन्यवाद ज्ञापन दिया तथा राष्ट्रगान के साथ ही उद्‌घाटन समारोह की समाप्ति की घोषणा की गई।

वर्ष 2022-23 में संस्थान में अन्य राजभाषा हिन्दी की गतिविधियों की रिपोर्ट:

बैठक: संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैंठकें दिनांक 27.12.2022, 31.03.2023, 30.06.2023 एवं 27.09.2023 को आयोजित की गई।

कार्यशालाएं:

1) 30.09.2022 को अनुसंधान एवं तकनीकी कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।
2) 30.12.2022 को अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।
3) 27.03.2023 को अधिकारीगण हेतु राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम आयोजन किया गया।
4) 27.06.2023 को अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।
5) 26.09.2023 को अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प. – उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प-उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान में डॉ. हरीश सिंह गिनवाल, निदेशक, की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति गठित है और संस्थान में सक्रिय विविध प्रभाग के प्रभागाध्यक्ष एवं अनुभागाध्यक्ष समिति के सदस्य हैं। गठित समिति की समय-समय पर बैठकें एवं पदाधिकारी वर्ग हेतु हिन्दी कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं।

संस्थान जबलपुर नगर राजभाषा कार्यान्वय समिति कार्यालय क्रमांक 02 का सदस्य कार्यालय है। संस्थान द्वारा उक्त समिति द्वारा आयोजित बैठकों में भाग लिया जाता है और संघ की राजभाषा नीति एवं नियमों के अनुपालन एवं कार्यान्वयन कार्य संबंध में दिये जाने वाले सुझावों पर अमल किया जाता है। इस दौरान, दिनांक 27 जुलाई, 2023 को आयोजित नराकास की बैठक में संस्थान ने प्रतिभागिता की।

14-15 सितंबर 2023 को माननीय केन्द्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री जी की अध्यक्षता में श्री शिव छत्रपति स्पोर्टस कॉंप्लैक्स, बालेवाड़ी, पुणे (महाराष्ट्र) में आयोजित हुए 'हिन्दी दिवस समारोह 2023' एवं 'अखिल भारतीय तृतीय राजभाषा सम्मेलन' में संस्थान की ओर से श्री विजय कुमार, सहायक निदेशक (राजभाषा) ने संस्थान की ओर से प्रतिभागिता सुनिश्चित की।

हिन्दी दिवस एवं हिन्दी पखवाड़ा 2023:

संस्थान में 15 से 29 सितंबर तक निदेशक महोदय की अध्यक्षता में हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया जिस दौरान संस्थान में कार्यरत अधिकारी, पदाधिकारी एवं शोध छात्रों हेतु राजभाषा हिन्दी की विविध प्रतियोगिताएँ आयोजित की गई।

हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह दिनांक 29 सितंबर, 2023 को हिन्दी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को निदेशक महोदय द्वारा नकद पुरस्कार तथा प्रशस्ति-पत्र एवं प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले प्रत्येक प्रतिभागी को सहभागिता-पत्र प्रदान कर बधाई दी गई तथा संस्थान के शासकीय कामकाज में राजभाषा हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाने हेतु आग्रह किया गया।

हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के अंतिम चरण में श्री दर्शन गट्टानी, भा.व.से., उप संरक्षक (प्रशासन) द्वारा हिन्दी प्रतियोगिताओं का सफल संचालन हेतु संयोजक, निर्णायक एवं प्रतिभागियों तथा हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह में उपस्थित वैज्ञानिक, तकनीकी अधिकारी, तकनीकी पदाधिकारी, अनुसचिवीय पदाधिकारी, शोध छात्रवर्ग के प्रति धन्यवाद ज्ञापित कर निदेशक एवं समारोह के अध्यक्ष महोदय की अनुमति एवं अनुमोदन से हिन्दी पखवाड़े का समापन किया गया।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प.-व.व.अ.सं., जोरहाट में विगत वर्षों की भांति राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए दिनांक 14 सितंबर से 27 सितंबर 2023 को हिंदी पखवाड़ा 2023 समारोह का आयोजन किया गया। हिंदी पखवाड़ा का शुभारंभ सामूहिक रूप से दिनांक 14 सितंबर 2023 को माननीय केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह की अध्यक्षता में श्री शिव छत्रपति स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स, पुणे, महाराष्ट्र में आयोजित किया गया। इस अवसर पर भा.वा.अ.शि.प.-व.व.अ.सं., जोरहाट के वरिष्ठ वैज्ञानिक, अधिकारी एवं कर्मचारी लाइव वेबकॉस्ट के माध्यम से इस कार्यक्रम के साक्षी बने। पुणे, महाराष्ट्र में संस्थान की ओर से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी ने सहभागिता की।

संस्थान में हिंदी पखवाड़ा के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के कुल 91 अधिकारियों, कर्मचारियों एवं परियोजना स्टाफ ने भागीदारी की।

संस्थान के निदेशक महोदय डॉ. नितिन कुलकर्णी ने हिंदी पखवाड़ा समारोह में सभी कार्मिकों को बीते हिंदी दिवस की शुभकामनाएं दी तथा सभी प्रभागाध्यक्षों, वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा राजभाषा हिंदी में किए जा रहे कार्यों व प्रयासों की सराहना की। निदेशक महोदय ने पखवाड़ा के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम में समूह समन्वयक (अनुसंधान) डॉ. राजीब कुमार बोरा, वैज्ञानिक – जी महोदय ने उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों से अनुरोध किया कि सभी कार्मिक राजभाषा हिंदी में कामकाज को प्राथमिकता दें।

कार्यक्रम में पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को नकद पुरस्कार एवं प्रमाणपत्र वितरित किए गए। कार्यक्रम में वित्तीय वर्ष 2022-23 के लिए संस्थान की राजभाषा प्रोत्साहन भत्ता नकद पुरस्कार योजना के अंतर्गत 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी कर्मचारी' वर्ग से श्री अजय कुमार, वैज्ञानिक-डी को कुल 5000/- रूपये (पांच हजार रूपये मात्र) नकद पुरस्कार एवं प्रमाणपत्र प्रदान किया गया। सभी पुरस्कार विजेताओं की घोषणा श्री राजीब कुमार कलिता, वैज्ञानिक-एफ व प्रभागाध्यक्ष, विस्तार प्रभाग द्वारा की गई।

संस्थान में वित्तीय वर्ष 2022-23 के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की कुल चार बैठकें आयोजित की गई जिसमें संस्थान में बेहतर राजभाषा कार्यान्वय से संबंधित विषयों पर महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। संस्थान में अधिकारियों/कर्मचारियों को राजभाषा हिंदी के विषय में जागरूक करने के लिए प्रत्येक तिमाही में विभिन्न विषयों पर हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। इस दौरान संस्थान की वार्षिक ई-पत्रिका वर्षारण्यम के 5वें संस्करण का प्रकाशन किया गया। वित्तीय वर्ष 2021-22 के दौरान राजभाषा हिंदी में बेहतर कार्यान्वय हेतु संस्थान को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

राजभाषा हिंदी से संबंधित कुछ झलकियां

वानिकी

कर्कुमा एलिस्मैटिफोलिया गगनेप अथवा सियाम लिली: एक संक्षिप्त विवरण

श्री प्रदीप कुमार हजारिका एवं श्री अंकुर ज्योति सैकिया

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

जिंजीबरेसी – अदरक पादप परिवार के अंतर्गत वर्गीकृत *कर्कुमा* एल. अथवा हल्दी वर्ग की प्रजातियाँ भारत से लेकर दक्षिण चीन, दक्षिण-पूर्व एशिया, पापुआ न्यू गिनी और उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय एशिया में भी व्यापक रूप में पाई जाती है। विश्व के अन्य स्थानों से यदि तुलना की जाएँ तो थाईलैंड में इस वर्ग के सबसे अधिक प्रजातियाँ प्राकृतिक रूप से उपलब्ध है। *कर्कुमा* की लगभग 38 प्रजातियां विश्वभर में पाई जाती हैं, जिन्हें अलग-अलग 5 समूहों में विभाजित किया गया हैं: 1) "*एलिस्मैटिफोलिया*" समूह (*क. एलिसमैटिफोलिया, क. ग्रासिलिमा, क. हरमांडी, क. परविफ्लोरा, क. रबदोटा, क. स्पार्गनिफोलिया* इत्यादि प्रजातियाँ); 2) "*कोचिनचिनेंसिस*" समूह (*क. कोचिनचिनेंसिस* और *क. पियरेना*); 3) "*इकोमाटा*" समूह (*क. बाइकलर, क. ईकोमाटा, क. फ्लेविफ्लोरा, क. ग्लान्स, क. सिंगुलरिस, क. स्टेनोचिला* इत्यादि प्रजातियाँ) ; 4) "*लोंगा*" समूह (*क. एरुगिनोसा, क. अमाडा, क. अंगुस्टिफोलिया, क. एरोमेटिका, क. कोमोसा, क. लैटिफोलिया, क. ल्यूकोराइजा, क. लोंगा, क. मंगा, क. रूबेसेन्स, क. विरिडीफ्लोरा, क. ज़ांथोरिज़ा और क. ज़ेडोरिया*); और 5) "*पेटियोलाटा*" समूह (*क. औरांतियाका, क. पेटियोलाटा, क. रोस्कोएना, क. रूब्रोब्रेक्टेटा* इत्यादि प्रजातियाँ)।

कर्कुमा लोंगा (खाने योग्य हल्दी), *क. ज़ेडोरिया* , *क. एरोमेटिका* आदि आमतौर पर औषधीय पौधों के रूप में उपयोग की जाने वाली प्रजातियों के विपरीत *कर्कुमा एलिस्मैटिफोलिया* गगनेप का व्यापक रूप में व्यवहार होता है कटे हुए फूलों तथा सजावटी पादप के रूप में। सियाम लिली के नाम से भी विख्यात इस पौध की पत्तियों को सूजन-विरोधी, एंटीऑक्सीडेंट व घाव-उपचार गुणों को प्रदर्शित करने का दावा किया गया है। इस फूल के एक क्लोन का चयन सबसे पहले चियांग माई विश्वविद्यालय से डॉ. पिसिट वोरौरई ने किया था, और '*चियांगमाई पिंक* ' नामक इस चयनित क्लोन को 1980 की शुरुआत में एक सजावटी पौधा के रूप में पेश किया गया था जो आजकल विश्व बाजार में प्रसिद्ध है। इस प्रजाति के फूलने वाले तनों में कई शीर्षस्थ खांचे होते हैं, जो प्याले जैसी संरचना बनाते हैं। अधिकांश निम्नतर सहपत्र हरे रंग के होते हैं, लेकिन जितने अधिक दूरवर्ती होते हैं, हरे वाले की तुलना में उतने ही अधिक, देशीय प्रजाति व व्यवसायिक किस्मों में गुलाबी होते हैं। पत्ते दो प्रकार के होते हैं, म्यान के पत्ते पहले छोटे व मोटे पत्ते ज्योंकी ब्लेड के साथ अंकुरित होते हैं और उसके बाद आते है अंडाकार पत्ते, जो गहरे हरे रंग के व इनकी मध्य शिरा लाल रंग की होती हैं।

सियाम लिली के पौधों की खेती करने का उपयुक्त समय है वसंत ऋतु में जमीन में प्रकंद डाल के किया जाता हैं। ये पौधे आमतौर पर अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी को पसंद करते हैं । एक हाउसप्लांट के रूप में इस लिली की खेती करते समय, जल निकासी छेद वाले कंटेनर का उपयोग करें। तल में कंकड़ की एक परत भी जल निकासी में सहायता कर सकती है। इस पौधे की देखभाल में मिट्टी को हर समय हल्का नम रखना सही है, परंतु जड़ों को कभी भी गीली मिट्टी में नहीं बैठने देना चाहिए। इसको ऐसे क्षेत्र में लगाएं जहां बहुत उज्ज्वल, परन्तु अप्रत्यक्ष प्रकाश हो अर्थात जहां सूरज की प्रखर धूप सीधे पत्तियों से नहीं टकराता हो। इसकी देखभाल में दिन में कई घंटे फ्लोरोसेंट रोशनी के तहत पूरक प्रकाश व्यवस्था, की जा सकती है। सियाम लिली की खेती करते समय सही रोशनी पौधे को खिलने के लिए आवश्यक है।

अप्रैल से लेकर अक्टूबर तक सियाम लिली को मासिक रूप से उर्वरक प्रदान करें; तत्पश्चात उर्वरक रोक दें और पौधे को सर्दियों के महीनों के दौरान निष्क्रिय रहने दें। जब पौधा नहीं बढ़ रहा हो तो कम पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन यह भी ध्यान दें की पूरी तरह से सूखना नहीं चाहिए। सुप्त अवधि के दौरान यह कर्कुमा अपने अधिकांश पत्ते खो सकता है, लेकिन वसंत ऋतु में फिर से उग आएगे। मृत या क्षतिग्रस्त पत्तियों

को छाँटें व आवश्यकतानुसार इसे रिपोट भी करें। जब पौधे अपने कंटेनर से बाहर निकल जाए जो उस पौधे को एक बड़े आकार के कंटेनर में लगा दें। हाउसप्लांट के रूप में सियाम लिली की खेती करते समय, कुछेक वर्षों में विभाजन करें जिससे अधिक पौधें प्राप्त हों। राइजोम अथवा प्रकंड को दो इंच (5 सेंटीमीटर) वर्गों में काटें और आवश्यकता अनुसार नए कंटेनरों में रोपित करें। यह एक बहुधा प्रस्फुटित पौधा है जो गर्मियों में प्रचुर मात्रा में पुष्पक्रम पैदा करता है। सियाम लिली के पौधे ऑनलाइन बेचे जाते हैं और स्थानीय नर्सरी में भी इन्हें पाए जा सकते हैं।

क ख

(क) सियाम लिली (*कर्कुमा एलिस्मैटिफोलिया*) पुष्पक्रम सहित एक पौधा, (ख) फुलवारी

वानिकी

मेहल : एक महत्वपूर्ण जंगली फलदार वृक्ष

डॉ. माला राठौर एवं श्री सुरेन्द्र सिंह
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मेहल रोजेसी कुल का एक पर्णपाती पेड़ है। जो हिमालयी क्षेत्रों में समुद्र तल से 500 मीटर की ऊंचाई से लेकर 2500 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। यह एक फलदार पेड़ है जिसके फल नाशपाती के आकार के गोल हरे होते है तथा पकने पर यह काले रंग के हो जाते है। इसे जंगली नाशपाती भी कहा जाता है। इसे अलग- अलग क्षेत्रों में अलग- अलग नामों से जाना जाता है। उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में इसे मेलु और मौऊ, कुमाऊं में इसे मेहल, मौव, जौनसार, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा (मौरनी हिल्स), पंजाब (पठानकोट) में कैंथ, जम्मू-कश्मीर में तंगी और नेपाल में इसे पासी कहा जाता है।

वितरणः मेहल भारत में मुख्य रूप से हिमालयी क्षेत्र में उत्तराखंड, हरियाणा (मौरनी हिल्स), पंजाब (पठानकोट), जम्मू कश्मीर तथा पूर्वोत्तर के राज्यों में पाया जाता है। इसके अलावा यह चीन के दक्षिणी भाग में, पाकिस्तान, वियतनाम, ईरान और अफगानिस्थान में भी पाया जाता है।

पर्यावासः यह पहाड़ों की ढालों पर, पर्वतीय घाटियों में तथा गांवों के आस-पास अधिक मात्रा में पाया जाता है, लेकिन कुछ पेड़ घनें जंगलों में भी पाये जाते है। यह अच्छी जल निकासी वाले रेतीले दोमट और पर्वतीय मिटटी में उगता है।

अकारिकीः पेड़ों की सामान्य ऊंचाई 3 से 12 मीटर के लगभग होती है। पेड़ सीधे और टेढ़े-मेढ़े तथा एक व अनेक शाखाओं में विभक्त होते है। इसकी पत्तियां शुरूआत में हल्की लालिमा के साथ निकलती है तथा बड़ी होने पर गहरे हरे रंग में बदल जाती हैं। पत्तियों की लम्बाई 5 सेमी से लेकर 10 सेमी तक तथा चौड़ाई 3 से 5 सेमी तक होती है। पेड़ पतझड़ के मौसम में अपनी पत्तियां गिरा देता है तथा जनवरी-फरवरी से नयी पत्तियां निकलनी शुरू हो जाती हैं। नये पौधों में कांटे अधिक होते है तथा पौधों की आयु बढ़ने के साथ कांटे कम होते जाते है। इसकी जड़ें अनेक शाखाओं में विभाजित होती है तथा लकड़ी सफेद मटमेले रंग की व मजबूत होती है।

फूल और फलः मेहल के फूल फरवरी के मध्य से खिलने शुरू हो जाते है जो सफेद रंग के पंखुड़ी के आकार के होते है तथा प्रत्येक पंखुड़ी मे चार से पांच पंख होते है जिनके मध्य हल्के लाल रंग के पुंकेश्वर निकले होते है, जो मार्च अंतिम सप्ताह से अप्रैल के प्रारम्भ में छोटे हरे रंग के फलों में बदलना शुरू हो जाते है।

मेहल एक फलदार पेड़ है। जिसके फल खाने योग्य होते हैं। यह अप्रैल मध्य से फल देना शुरू कर देता है तथा सितम्बर, अक्टूबर में फल पकने शुरू हो जाते है, जो दिसंबर अंतिम सप्ताह तक रहते है अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में फल अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय तक रहते है।

फलों का स्वाद पकने पर मीठा होता है इसके फल का बाहारी आवरण गुदे के साथ सटा होता है जिसे अलग नहीं किया जा सकता है तथा बाहरी आवरण सहित फल खाने योग्य होता है। फल को स्थानीय लोगों, पशुओं तथा जगंली जानवरों के द्वारा खाया जाता है। भालू का यह प्रिय भोजन है।

पोषणः इसके फलों में शर्करा, प्रोटीन, राख, पेक्टिन, विटामिन सी आदि पोषक तत्व तथा अन्य खनिज तत्व जैसे पोटेशियम, फास्पोरस, कैल्सियम, मैगनीशियम व लोहा की मात्रा विद्यमान होती है। इसके फलों से अचार, जैम, मुरब्बा, मिठाईयां आदि बनाई जाती है। हांलाकि यह पके फलों के जल्दी खराब होने व जानकारी न होने के कारण इसकी राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय बाजारों में मांग कम है।

बीजः फल से बीज बनने कुछ समय बाद शुरू हो जाते है और पकने पर एक फल से पांच से आठ काले रंग के बीज प्राप्त होते हैं। इनका आकार नाशपाती जैसा होता है जो 5 से 8 मिमी लंबे तथा 3 मिमी चौड़े होते हैं तथा 15 से 20 मिलीग्राम वजन के होते है। बीज कोष्ठों के अंदर होते है एक बीज कोष्ठ के अंदर सामान्यतः दो बीज होते हैं।

औषधीय उपयोगः स्थानीय लोग पके फलों के रस को रोगों के उपचार के लिए उपयोग करते है। दस्त के लिए भी इसके रस का सेवन किया जाता है। शरीर में अत्यधिक गर्मी या सर्दी में भी इसका सेवन या इसके रस का सेवन किया जाता है और आंखों के रोग के उपचार में भी इसका उपयोग किया जाता है। उत्तराखंड के कई क्षेत्रों में पहले इसके फूलों की सब्जी बनायी जाती थी तथा पूर्वोत्तर क्षेत्रों में आदिवासी लोग इसके पत्तों से ग्रीन टी भी बनाते हैं।

अन्य उपयोगः इसकी लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में, भेड़ बकरियों के चारे के रूप में किया जाता है तथा लकड़ी कठोर व मजबूत होने के कारण स्थानीय लोग इसकी लकड़ी को कृषि उपकरणों जैसे गैंती का डंडा, दराती का हत्था, फड़वे का डंडा आदि को बनाने में भी इसका उपयोग करते है। पेड़ कांटेदार होने के कारण बाड़ लगाने के लिए भी उपयोग किया जाता है। इसकी रूट स्टॉक का उपयोग ग्राफ्टिंग के लिए किया जाता है। यह वनों में मृदा क्षरण को रोकने के साथ-साथ जैवविधिता बढ़ाने व वनों के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए भी आवश्यक है।

अतः यह एक उपयोगी वृक्ष है जो अभी तक बिना जानकारी के अभाव में उपयोग नहीं हो पाया है तथा अभी तक पर्यावरण विदों व शोधकार्त्ताओं का ध्यान इस बहुउपयोगी पेड़ की ओर नहीं गया है। इसके फलों से अनके खाद्य पदार्थों को तैयार किया जा सकता है एवं इसकी लकड़ी व पेड़ के अन्य भागों का उपयोग मानवीय जीवन को और समृद्ध बनाने के लिए किया जा सकता है। वर्तमान में मोटे अनाजों को दिये जा रहे प्रोत्साहान के जैसा इन जंगली फलों को भी प्रोत्साहान दिया जाना चाहिए, ताकि इनका उपयोग ठीक से हो सके और स्थानीय लोग इससे लाभांवित हो सके व उनकी आजीविका में सुधार हो सके।

मेहल वृक्ष

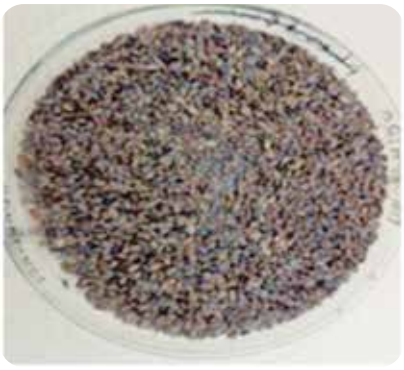

मेहल से बने उत्पाद

बेहमी: उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र का एक बहु-उद्देशीय वृक्ष

डॉ. पीताम्बर सिंह नेगी

भा.वा.अ.शि.प. - हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

बेहमी उत्तर – पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण फलदार वृक्ष है। इस वृक्ष का वनस्पतिक नाम *प्रूनस मीरा* (*Prunus mira* Kohne)है । यह वृक्ष Amygdalaceae परिवार से संबंध रखता है। स्थानीय भाषा में इसे "रेग" "रोक" के नाम से जाना जाता है। इसे जंगली आड़ू भी कहते हैं। यह एक मध्यम आकार का बहु-उद्देशीय वृक्ष है। इस की ऊंचाई 8-10 मीटर तक होती है तथा इस के तनों की परिधि 70-80 से.मी. तक होती है। इस की जड़ें भूमि में 5-7 मीटर की गहराई तक फैली होती हैं। इस के पत्ते भालाकार होते हैं। पत्तों की लंबाई 5-10 से.मी. एवं चौड़ाई 1.5-3.5 से.मी. तक होती है। इस के फल गोलाकार होते हैं तथा इस के बाहरी आवरण रोयेंदार होती है। इस के कच्चे फलों का रंग हरा होता है तथा पूर्ण रूप से पके फलों के भीतरी भाग का रंग हल्का पीला होता है। इस के बीजों के बाहरी आवरण का रंग हल्का भूरा एवं गिरी का रंग भूरा होता है। इस के बीज अंडाकार एवं एक सिरे से थोड़ा- सा तीखा होता है। बेहमी के वृक्ष में फूल एवं नए पत्ते मार्च-अप्रैल के महीनों में लगते हैं। इस के फल कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सितंबर में और अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अक्टूबर में पक जाते हैं। यह वृक्ष विश्व के शीतोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। भारतवर्ष में यह फलदार वृक्ष विशेष रूप से उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में समुद्रतल से लगभग 2600-3400 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह वृक्ष मूल रूप से किन्नौर, चंबा, शिमला, सिरमौर और मंडी जिलों के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। यह वृक्ष रेतीली एवं रेतली-दोमट मिट्टी में सुगमता से उगता है। बेहमी को बहु-उद्देशीय वृक्ष इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि इस वृक्ष से ना केवल खाने योग्य स्वादिष्ट फल एवं तेल मिलता है अपितु इसकी लकड़ी को पहाड़ी क्षेत्रों में स्थानीय लोग जलाने और पत्तों को पालतू पशुओं के चारे के रूप में भी उपयोग में लाई जाती है। आज से 25 -30 वर्ष पूर्व बेहमी के वृक्ष उत्तर -पश्चिमी हिमालय क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती थी, परंतु पिछले कुछ दशकों से इस वृक्ष की संख्या इनके प्राकृतिक क्षेत्रों में लगातार कम होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण किसानों

बेहमी का पेड़

द्वारा जाने अनजाने में इसके पेड़ों को काट कर इसकी जगह अन्य फलदार पौधे जैसे नाशपाती, सेब, बादाम इत्यादि लगाना माना गया है। आज फिर से इस बहुमूल्य वृक्ष के संरक्षण करने की महसूस की जा रही है। इस वृक्ष का अधिक से अधिक से अधिक मात्रा में वन क्षेत्रों में रोपण करके केवल इसे संरक्षित किया जा सकता है बल्कि यह वन्य प्राणियों के लिए भी वरदान साबित होगा। इसके अलावा स्थानीय लोग इस बहुमूल्य वृक्ष से प्राप्त होने वाले उत्पादों विशेषकर फल एवं इसके गिरी से मिलने वाली तेल को बेच कर ग्रामीण अपनी अतिरिक्त आय का साधन जुटा सकते हैं।

बीज एकत्रण: बेहमी के फल उत्तर –पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में सितंबर-अक्तूबर के महीनों में पूर्ण रूप से पक जाता है। इसके पके हुए फलों को सितंबर-अक्तूबर के महीनों में सीधे वृक्षों से एकत्रित किया जाता है। इस के उपरांत बीजों को फलों से अलग किया जाता है। बीजों को फलों से अलग करने के उपरांत धूप वाली जगह पर लगभग एक सप्ताह तक सुखाया जाता है। इसके बीज एक किलोग्राम में लगभग 450-500 तक होते हैं।

बीजों की बुवाई: बेहमी के पौधों को पौधशाला की क्यारियों में मुख्तय: बीजों द्वारा उगाया जाता है। इस की बुवाई पौधशाला की क्यारियों में नवंबर- दिसम्बर महीनों में किया जाता है। इसके बीजों की बुवाई से पूर्व पौधशाला में 10x1 मीटर की आकार वाली क्यारियाँ बनवाए। इसके बाद इन क्यारियों में मिट्टी को अच्छी तरह से खोदकर उस में उचित मात्रा में मिट्टी, खाद एवं

बेहमी के फल

रेत का मिश्रण (2:1:1) मिला कर समतल बनवाए। उस के बाद इन क्यारियों में बेहमी के बीजों को पंक्तियों में 3-4 से.मी. की गहराई पर बीजाई करें। पंक्तियों की आपस की दूरी 10-15 से.मी. रखें। बुवाई के बाद इस के बीज पौधशाला की क्यारियों में मार्च-अप्रैल के महीनों में अंकुरित होते हैं। बीजों की अंकुरण प्रतिशतता 80-90 % तक होती है।

पौधशाला में बेहमी का रखरखाव: बीज अंकुरित होने के उपरांत बेहमी के नए उगे पौधों का पौधशाला की क्यारियों में विशेष ध्यान रखना पड़ता है। नए उगे अंकुरों को अक्सर पक्षी नुकसान पहुंचाते हैं, इसलिए इन नन्हे अंकुरों की देखभाल पर विशेष ध्यान दें। पौधशाला की क्यारियों में बीजों की बुवाई के उपरांत नियमित रूप से सिंचाई करें, क्योंकि बीजों के अंकुरण के दौरान पौधशाला की क्यारियों में नमी की मात्रा बनी रहे। बीजों के अंकुरण के पश्चात पौधशाला की क्यारियों में निराई एवं गुड़ाई का कार्य नियमित रूप से करें, ताकि क्यारियों में खरपतवार न उगे। इसके पौधे नर्सरी में अंकुरण के पश्चात एक साल बाद 35-40 से.मी. की ऊँचाई धारण करता है तथा पौधरोपण के लिए तैयार हो जाता है।

वृक्षारोपण समय एवं विधि: बेहमी के पौधों का रोपण कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में नवंबर-दिसम्बर में किया जाता है और अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बर्फ के पिघलने के बाद मार्च- अप्रैल के महीनों में किया जाता है। वृक्षारोपण से दो-तीन माह पूर्व रोपण क्षेत्र में 45x45x45 से.मी. के गड्ढे बनवाएं। इन गड्ढों से निकाली गई मिट्टी को इस के आस पास रखें ताकि यह धूप में अच्छी तरह सुख जाएं। रोपण क्षेत्र में गड्ढों की आपस की दूरी 5मी.x5मी. रखें। पौधों के रोपण से पूर्व गड्ढों की एक चौथाई भाग को मिट्टी एवं खाद के समुचित मिश्रण से भर लें, तत्पश्चात पौधों को इन गड्ढों में रोपित करें। रोपण के दौरान पौधों को सीधे पकड़ कर गड्ढों में रोपित करें और जड़ों को मुड़ने ना दें। इसके उपरांत गड्ढों को मिट्टी एवं खाद के समुचित मिश्रण से भर लें और पौधों के चारों ओर की मिट्टी को हाथ एवं पेरों की सहायता से अच्छी तरह से दबा दें ताकि गड्ढों में खाली जगह ना रहें। वृक्षारोपण के तुरंत बाद फव्वारे की सहायता से पौधों की सिंचाई करें ताकि प्रत्यारोपित पौधे उचित मात्रा में पानी ग्रहण कर लें जो पौधों की विकास के लिए अति आवश्यक है। यदि इस दौरान पौधों को पानी ना मिले तो पानी की कमी के कारण इनका विकास रुक जाता है और रोपण क्षेत्र में पौधों की जीवित प्रतिशतता कम रहती है। इसके अलावा रोपण क्षेत्र में निराई एवं गुड़ाई का कार्य बरसात के दौरान महीने में एक बार तथा बाकी के दिनों में आवश्यकता अनुसार करें ।

बेहमी के औषधीय गुण एवं उपयोग: बेहमी के वृक्ष से प्राप्त उत्पादों का उपयोग प्राचीन समय से ग्रामीण क्षेत्र के लोग विभिन्न प्रकार के बीमारियों के उपचार में करते आ रहें हैं। इसके फलों का सेवन करने से कब्ज एवं अपचन में राहत मिलती है। इसके गिरी से प्राप्त तेल का नियमित रूप से सेवन करने से शारीरिक दुर्बलता दूर होती है। इसके तेल से मालिश करने से जोड़ों के दर्द एवं गठिया रोगों से निदान मिलता है। इसके तेल की मालिश नवजात शिशुओं के लिए अति लाभदायक होता है। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में स्थानीय लोग इसके सूखे फलों को अन्य फलों विशेषकर सेब, चूली, नाशपाती इत्यादि के साथ मिला कर मदिरा बनाते हैं तथा इसे उपयोग में लाते हैं। इसकी गिरी को ओखली में कूट कर स्थानीय लोग विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाते हैं जिसका सेवन करने से शारीरिक दुर्बलता दूर होती है। इसकी गिरी से तेल निकालने के उपरांत बची "खल " या "खोली" दुधारू पशुओं के लिए अति लाभदायक होती है। किन्नौर जिले में ग्रामीण लोग बेहमी के सूखे गिरी से मालाएं बनवाते हैं तथा इन का उपयोग शादियों एवं अन्य तीज त्योहारों में सगे संबंधियों को दे कर सम्मानित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी को स्थानीय लोगों द्वारा सर्दियों के मौसम में घरों में जलाने के लिए किया जाता है।

बेहमी एक बहुमूल्य फलदार वृक्ष है, जिसकी संख्या प्राकृतिक वास में लगातार कम होती जा रही है। मौजूदा समय में इस वृक्ष की संरक्षण के लिए उचित कदम उठाने की आवश्यकता है। इसका रोपण सामुदायिक भूमि एवं वन क्षेत्रों में अधिक से अधिक करवा कर वन्य प्राणियों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।

पूर्वोत्तर भारत की महत्वपूर्ण लकड़ी उत्पादक वन प्रजाति

डॉ. मनीष कुमार सिंह

भा.वा.अ.शि.प. - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

फोएबे गोलपरेंसिस हचिंसन (लॉरेसी) को 'बॉन्सम ट्री' नाम से भी जाना जाता है, जो भारत-म्यांमार जैव विविधता हॉटस्पॉट (आईएमबीएच) में पूर्वोत्तर भारत में पाई जाने वाली एक आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रकाष्ठ उत्पादक वन-प्रजाति है। यह वृक्ष अपने विशिष्ट काष्ठ गुणों के कारण प्रकाष्ठ उद्योगों में महत्वपूर्ण व्यावसायिक महत्व प्रदर्शित करता है। प्रकाष्ठ की मजबूती, कठोरता और टिकाऊपन के कारण इसका फर्नीचर निर्माण, घर निर्माण, जहाज निर्माण, फर्नीचर, कैबिनेट कार्य, कैरिज और टी-चेस्ट प्लाइवुड के लिए उच्च मांग बना रहता है (एनॉन, 1959)। इसे भारत सरकार के वन विभागों द्वारा 'क्लास-A1' लकड़ी के रूप में दर्शाया गया है; इसलिए इसका न्यूनतम विक्रय-मूल्य, सागौन (*टेक्टोना ग्रैंडिस* एल. एफ.) काष्ठ के बाद दूसरे स्थान पर है। यह वृक्ष 04 डिग्री सेल्सियस से 37 डिग्री सेल्सियस वाले स्थानों पर जहाँ वार्षिक वर्षा 2000-3500 मिमी से अधिक होती है, पे पाया जाता है (देब 1960)। यह वृक्ष, न्यूनतम 1650 मीटर की ऊंचाई पर बलुई दोमट से लेकर चिकनी मिट्टी (डोवेराह 1995) में विकसित होता है। यह भारत में आईएमबीएच क्षेत्र के पर्वतीय उपोष्णकटिबंधीय जलवायु वनों में एक प्रमुख प्रजाति है (देब 1960)। उच्च व्यावसायिक मांग के कारण, असंधारणीय कटाई प्रथाओं के माध्यम से प्रजातियों का अत्यधिक दोहन होने के कारण, इसकी आबादी कम होती जा रही है। स्थानीय लोगों द्वारा वृक्ष से प्राप्त प्रकाष्ठ के नियमित उपयोग के बावजूद, इसका आर्थिक मूल्यांकन कभी भी प्रलेखित नहीं किया गया है। क्षेत्रीय और वैश्विक व्यापार में इसके प्रकाष्ठ के उपयोग की वास्तविक सूची भी उपलब्ध नहीं है। इस कार्य के माध्यम से उपलब्ध साहित्य की समीक्षा करते हुए और क्षेत्र सर्वेक्षण, सैंपलिंग और मूल्यांकन करते हुए इस वृक्ष की वनस्पति विज्ञान, बीज संग्रह, प्रसंस्करण और हैंडलिंग, सुप्तता और पूर्व उपचार, भंडारण और व्यवहार्यता, बुवाई और अंकुरण आदि से संबंधित सभी उपलब्ध जानकारी का प्रलेखन किया गया है।

वनस्पतिशास्त्रः *पी. गोलपेरेन्सिस* में कॉम्पैक्ट क्राउन, आधार पर बट्रेस और 14-17 मीटर का शाखाहीन प्रस्तम्भ होता है। छाल हरी या काली भूरे रंग की, जालीदार रूप से नालीनुमा आकार की होती है; पत्तियाँ 7.5-16 सेमी लंबी, 2.5-5.5 सेमी चौड़ी, दीर्घवृत्ताकार, शीर्ष नुकीली होती हैं। पुष्पक्रम लंबे पुष्पगुच्छों में, डंठल लगभग 0.5 सेमी लंबे होते हैं। फूलों की कलियाँ अंडाकार होती हैं, 0.6-0.7 सेमी लंबी, पेडिशल खंड लगभग 0.5 सेमी लंबे, 0.3 सेमी चौड़े, अंडाकार, मोटे, चर्मवत्, बाहर से यौवनयुक्त, आधार की ओर अंदर से खसखसदार होते हैं। पेरियंट पतले होते हैं; लगभग 0.5 सेमी लंबे फिलामेंट्स प्यूब्सेंट; परागकोश आयताकार-अंडाकार होते हैं। अंडाशय दबा हुआ, गोलाकार और प्यूब्सेंट होते है; शैली लगभग 01 मिमी लंबी।

फल और बीज विवरण

फल: फल ड्रूप, दीर्घवृत्ताकार, बैंगनी काला, लगभग 1.5-3.7 सेमी लंबा और चिकना होता है। मेसोकार्प पतला और सुगंधित होता है। फल खाने योग्य नहीं होते हैं।

बीज: बीज एंडोकार्प (पाइरीन/स्टोन) में संलग्न होता है। यह दीर्घवृत्ताकार और काले रंग का होता है। प्रति किलोग्राम बीजों (पाइरीन) की संख्या 600-900 तक होती है।

पुष्पन एवं फलन: फूल उभयलिंगी होते हैं, इसमें फूल अप्रैल-मई के दौरान आते हैं। फल अक्टूबर-नवंबर में पकते हैं। पके फल, पक्षियों और जंगली जानवरों द्वारा खाए और बिखेर दिए जाते हैं।

बीज संग्रह: ताजे फल पूरी तरह पकने पर बैंगनी-काले रंग के हो जाते हैं, इस समय इनको एकत्रित किया जाता है। परिपक्व बीज का रंग भूरा-काला तथा इसमें नमी की मात्रा 32-35% होती है। संग्रहण की विधि यह है कि पेड़ के नीचे तिरपाल बिछाया जाता है और शाखाओं को काटकर फल एकत्रित किये जाते हैं।

प्रसंस्करण और हैंडलिंग: फलों को सड़ने के लिए छाया में ढेर कर दिया जाता है और गूदे को हाथों से रगड़कर हटा दिया जाता है और फिर बहते पानी के नीचे अच्छी तरह से धोया जाता है (यदि संभव हो तो उच्च पानी के दबाव में)। इसके बाद बीजों को छाया में सतह पर सुखाया जाता है। बीज निकालते समय सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि अधिक सुखाने से एंडोकार्प और बीज आवरण टूट सकता है ।

सुप्तावस्था और पूर्व उपचार: नये बीजों से लगभग 35-70% बीज ही अंकुरित हो पाते है। बीज का आवरण पतला लेकिन कठोर होता है और इसकी जलरोधी प्रकृति के कारण अंकुरण बाधित होता है। हाथ से हटाने या बीज कोट पर 2-4 अनुदैर्ध्य चीरे जल अवशोषण और उसके बाद अंकुरण में मदद करते हैं। परीक्षण प्रयोजनों के लिए अंकुरण हेतु सबसे अच्छा उपचार यह है कि बीज को आधे हिस्सों में काटा जाए, आधे हिस्से का बीज कोट जिसमें भ्रूणीय अक्ष होता है, उसको हटा दें और इसे ट्रे में नम कागज पर रखें। इस विधि से व्यवहार्य बीज शत-प्रतिशत अंकुरित होते हैं।

भंडारण और व्यवहार्यता: बीज, शुष्कन के प्रति संवेदनशील होते हैं। 29% नमी मात्रा से नीचे शुष्कन होने से अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बीजों को 32-34% नमी मात्रा पे, 5-15°C पर कम से कम दो वर्षों तक भंडारित किया जा सकता है। यदि फसल की नमी की मात्रा पर पॉलीबैग में संग्रहीत किया जाता है, तो परिवेशीय स्थिति (15-30 डिग्री सेल्सियस) पर बीज छह महीने तक व्यवहार्य रहते हैं। वातित और हाइड्रेटेड स्थिति में (बंद डिब्बे में पानी में भंडारित) बीज अंकुरित न होने पर दो साल तक व्यवहार्य रहते हैं। भंडारण से पहले बीजों को फफूंदनाशी के रूप में उपयोग किए जाने वाले 0.2% बाविस्टिन से ड्रेसिंग करके उपचारित किया जाता है।

बुआई एवं अंकुरण: बुआई उचित छायादार बीज क्यारियों में 1.5-2.0 सेमी की गहराई पर की जाती है, जिसमें बीज का नुकीला सिरा ऊपर की ओर उन्मुख होता है। अंकुरण हाइपोगियल है। यह लगभग 35 दिन बाद प्रारंभ होता है तथा लगभग 04 माह में पौध तैयार हो जाता है। बुआई के लगभग चार महीने बाद जब अंकुर तीन पत्ती वाली अवस्था में होते हैं तो रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। स्टंप पौधारोपण कुछ हद तक सफल भी होता है। इस प्रजाति हेतु सीधी बुआई सफल होते नहीं देखी गई है।

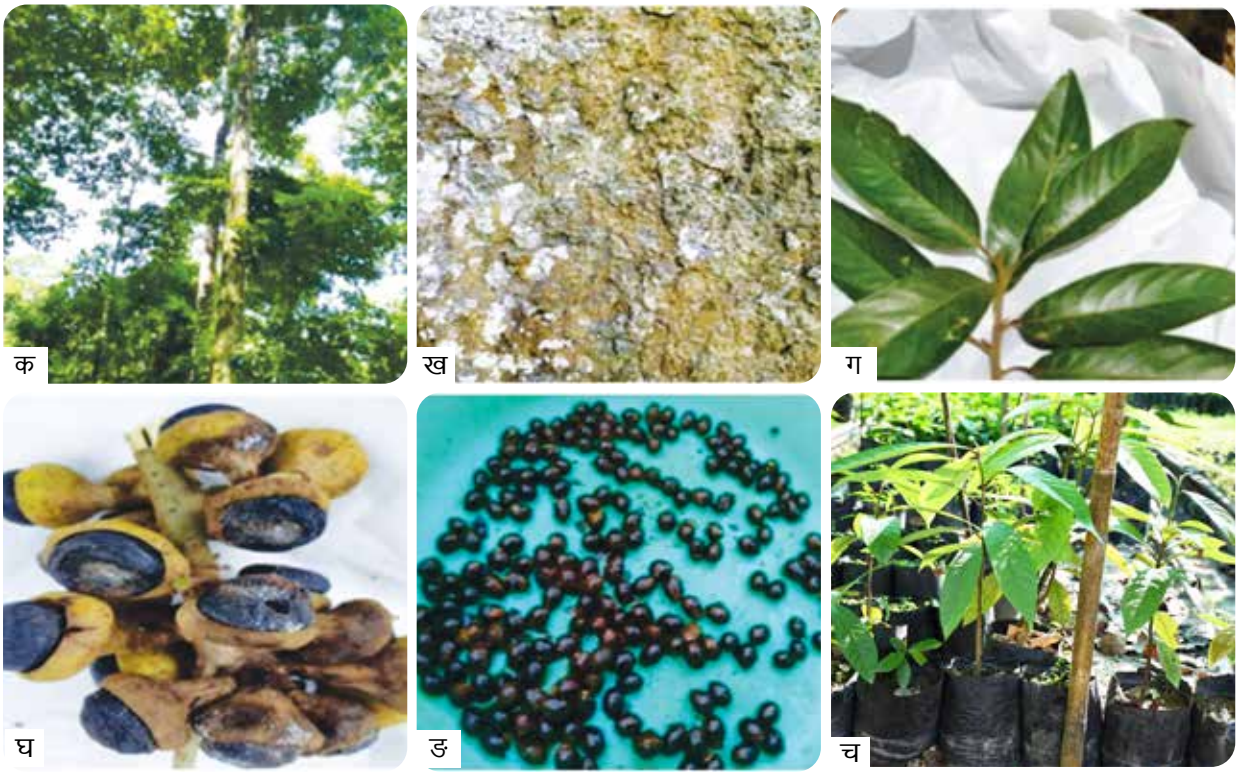

फोएबे गोलपरेंसिस: **क**. वृक्ष , **ख**. तना, **ग**. पत्ते, **घ**. पके परिपक्व फल, **ङ** प्रसंस्कृत बीज, **च.** नर्सरी में तैयार पौधे।

वानिकी

जलमग्न क्षेत्र संरक्षण हमारे पारितंत्र के लिये आवश्यक

डॉ. कुमुद दुबे, श्री आशीष कुमार यादव एवं सुश्री दर्शिता रावत

भा.वा.अ.शि.प.-पारि-पुनर्स्थापन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज

जलमग्न अथवा आर्द्रभूमि (वेटलैंड):

आर्द्रभूमि वे पारितंत्र हैं जो मौसमी या स्थायी रूप से जल से संतृप्त या भरे हुए होते हैं। इनमें मैंग्रोव, दलदल, नदियाँ, झीलें, डेल्टा, बाढ़ के मैदान और बाढ़ के जंगल, प्रवाल भित्तियाँ, समुद्री क्षेत्र जहाँ निम्न ज्वार 6 मीटर से अधिक गहरे नहीं होते तथा इसके अलावा मानव निर्मित आर्द्रभूमि जैसे- अपशिष्ट जल उपचारित जलाशय शामिल हैं। यद्यपि ये भू-सतह के केवल 6 प्रतिशत हिस्से को ही कवर करते हैं, सभी पौधों और जानवरों की प्रजातियों का 40 प्रतिशत आर्द्रभूमियों में ही पाया जाता है। प्रति वर्ष 2 फरवरी को विश्व वेटलैंड दिवस मनाया जाता है। बढ़ते शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण विश्व भर में झीलों को अनेक प्रकार से क्षति पहुंची है। इसी कारण से सभी देशों में जल प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए व्यापक कानून बनाया गया है। प्रत्येक वेटलैंड का अपना पारिस्थितिक तंत्र होता है। जैव विविधता होती है, वानस्पतिक विविधता होती है। ये वेटलैंड जलजीवों, पक्षियों, आदि प्राणियों के आवास होते हैं। वेटलैंड के जल संरक्षण एवं जल प्रबंधन के पीछे यही उद्देश्य है कि जल के संरक्षण के साथ-साथ उनके पारितंत्र का भी संरक्षण किया जाये, जिससे जल की गुणवत्ता बनी रहे। इसीलिये झीलों के पुनरूद्धार एवं उनकी जल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए सघन प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में अनेक झीलों के संरक्षण के प्रयासों को विश्व स्तर पर सराहा गया है।

झीलों तथा नम भूमि के संरक्षण के लिए सर्वप्रथम 1971 में इस प्रकार का पहला सम्मेलन रामसर सम्मेलन ईरान के रामसर शहर में यूनेस्को द्वारा आयोजित किया गया था। इसके अंतर्गत संरक्षण' हेतु वेटलैंड की पहचान सुनिश्चित करने के लिये कुछ मानदंड निर्धारित किये गये है। इस मानदंड के अनुसार संरक्षण हेतु चयनित झीलों एवं नम भूमि को रामसर साइट कहा जाता है। रामसर साइट दुनिया भर में आर्द्रभूमि की पहचान है जो अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के हैं, खासकर अगर वे जलपक्षी (पक्षियों की लगभग 180 प्रजातियों) को आवास प्रदान करते हैं। रामसर साइट होने के लिये निम्नलिखित नौ मानदंडों में से किसी एक को पूरा किया जाना चाहिये:

- यदि इसमें उपयुक्त जैव-भौगोलिक क्षेत्र के भीतर पाए जाने वाले प्राकृतिक या निकट-प्राकृतिक आर्द्रभूमि प्रकार का प्रतिनिधि, दुर्लभ या अद्वितीय उदाहरण है।
- यदि इसमें कमजोर, लुप्तप्राय या गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजातियों या संकटग्रस्त पारिस्थितिक समुदाय पाई जाती है।
- यदि यह किसी विशेष जैव-भौगोलिक क्षेत्र की जैविक विविधता को बनाए रखने के लिये महत्त्वपूर्ण पौधों और/या पशु प्रजातियों की आबादी का समर्थन करता है।
- यदि यह पौधों और/या पशु प्रजातियों को उनके जीवन चक्र में एक महत्त्वपूर्ण चरण में समर्थन देता है या प्रतिकूल परिस्थितियों के दौरान आश्रय प्रदान करता है।
- यदि यह नियमित रूप से 20,000 या अधिक जलपक्षियों का समर्थन करता है।
- यदि यह नियमित रूप से एक प्रजाति या वाटरबर्ड की उप-प्रजाति की आबादी में 1 प्रतिशत व्यक्तियों का समर्थन करता है।
- यदि यह स्वदेशी मछली उप-प्रजातियों, प्रजातियों या परिवारों, जीवन-इतिहास चरणों, प्रजातियों की अंतः क्रिया और आबादी के एक महत्त्वपूर्ण अनुपात का समर्थन करता है जो आर्द्रभूमि के लाभ और/या मूल्यों के प्रतिनिधि हैं और इस प्रकार वैश्विक जैविक विविधता में योगदान करते हैं।
- यदि यह मछलियों, स्पॉन ग्राउंड, नर्सरी और प्रवास पथ के लिये भोजन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जिस पर या तो आर्द्रभूमि के भीतर या अन्य जगहों पर मछली का स्टॉक निर्भर करता है।

- यदि यह नियमित रूप से प्रजाति या आर्द्रभूमि-निर्भर गैर एवियन पशु प्रजातियों की उप-प्रजातियों की आबादी के 1 प्रतिशत का समर्थन करता है।

भारत की रामसर आर्द्रभूमि, 18 राज्यों में देश के कुल आर्द्रभूमि क्षेत्र के 11,000 वर्ग किमी. में फैली हुई है एवं देश में अब ऐसे स्थलों की संख्या 54 हो गई है। पश्चिम बंगाल में सुंदरबन भारत का सबसे बड़ा रामसर स्थल है।

उत्तर प्रदेश में संरक्षण' हेतु कुल चयनित 12 रामसर साइट है। कुल 06 रामसर साइट उन्नाव का नवाबगंज पक्षी विहार, गोंडा का पार्वती अरंगा वन्य जीव विहार, मैनपुरी का समान पक्षी विहार, रायबरेली का समसपुर पक्षी विहार, हरदोई का सांडी पक्षी विहार एवं इटावा का सरसई नाव झील को मंजूरी प्रदान कर दी गयी है। मैनपुरी सौज झील, अलीगढ़ शेखा झील, संतकबीरनगर बखीरा वन्य जीव विहार, एटा पटना पक्षी विहार, आगरा सुरोवर वन्य जीव विहार एवं बलिया सुरहा ताल वन्य जीव विहार को रामसर सूची में शामिल करने के लिए प्रस्ताव को केंद्र सरकार द्वारा रामसर सचिवालय को भेजा गया है। इन रामसर साइट के अतिरिक्त भी कई प्रदेश में कई महत्वपुर्न वेटलैंड है जिनका संरक्षण किया जा रहा है. जैसे मलाका हरहर वेटलैंड, बासुपुर वेटलैंड प्रयागराज में स्थित हैं। इसी तरह रामगढ़ताल गोरखपुर में स्थित हैं। गंगा बेसिन में भी कई वेटलैंड स्थित है जिनका संरक्षण नमामि गंगे प्रोजेक्ट के अंतर्गत किया जा रहा है। आधुनिक युग में जहां विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन को सुगम बना दिया है, वहीं इसके साथ ही अनेक पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। जलमग्न क्षेत्र संरक्षण एक ऐसा प्रमुख मुद्दा है जिसे हमें गंभीरता से लेना चाहिए। जलमग्न क्षेत्र संरक्षण का मतलब होता है जल की संरक्षण और जलस्रोतों को सुरक्षित रखना। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि जल हमारे पारितंत्र का एक मुख्य संसाधक है और हमारे जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जल हमारे जीवन का आधार है। इसके बिना कोई भी प्राणी अपनी जीविका नहीं चला सकता। जल का सदुपयोग न केवल पीने के लिए होता है बल्कि उसका उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में भी होता है जैसे कृषि,औद्योगिक उत्पादन, ऊर्जा, पर्यटन आदि। इसलिए जलमग्न क्षेत्र संरक्षण हमारे पारितंत्र के लिए आवश्यक है। जलमग्न क्षेत्र संरक्षण का महत्व हमारे पारितंत्र के साथ गहरी जुड़ाव का हिस्सा है। यह हमें प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, जलप्रलय, जल-संकट और जल-संकटों के कारण उत्पन्न समस्याओं से निपटने में मदद करता है। यह न केवल मानव जीवन को सुरक्षित रखता है, बल्कि भूमि, जीवन, वनस्पति और पशुपालन के लिए भी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

जलमग्न क्षेत्र संरक्षण के उपायों में सबसे पहले हमें प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग की ओर ध्यान देना चाहिए। जल संचयन विपणन और पुनर्नवीकरण के लिए अधिकतम इंजीनियरिंग की आवश्यकता होती है। बांधों नहरों, जल रोडों, जलाशयों और अन्य जल संरचनाओं का निर्माण और उनकी नियंत्रण और प्रबंधन का खास ध्यान रखना चाहिए। दूसरा महत्वपूर्ण चरण है जलमग्न संबंधी जागरूकता। लोगों को जलमग्न के जोखिमों, संभावित संकटों और उनके परिणामों के बारे में शिक्षित करना चाहिए। जलमग्न संरक्षण के लिए योजनाएं और कार्यक्रम शुरू करने चाहिए, जिनमें स्थानीय समुदायों, सरकारी निकायों और अन्य संगठनों की भागीदारी ली जाए। जलमग्न क्षेत्र संरक्षण के लाभों में एक महत्वपूर्ण लाभ है पानी की संपदा की सुरक्षा। पानी की आपूर्ति और पानी के संभावित अभाव का खतरा कम होता है। इसके साथ ही, जलमग्न क्षेत्र संरक्षण, हमें पर्यावरणीय सुरक्षा भी प्रदान करता है। जलमग्न क्षेत्र संरक्षण सामाजिक और आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहित करता है। इसके माध्यम से स्थानीय समुदायों को रोजगार की अवसरों का सम्मान और आय का वितरण होता है। जलमग्न संरक्षण योजनाओं के माध्यम से पानी के संचयन और पुनर्नवीकरण के क्षेत्र में उद्यमिता और नवाचार को बढ़ावा मिलता है। जलमग्न क्षेत्र संरक्षण हमारे पारितंत्र के लिए आवश्यक है क्योंकि जल हमारे जीवन का मूलाधार है। इसलिए पानी की उपयोगिता और संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक संतुलन के लिए जलमग्न क्षेत्र संरक्षण से हम प्राकृतिक संतुलन को संरक्षित रख सकते हैं। जल के संरक्षण से नदियाँ, झीलें, तालाब और मरुस्थल में संतुलन बना रहता है जिससे वनस्पति, जनजीवन और प्राणी जगत का अनुकूल वातावरण बना रहता है।

जलसंचयन के लिए जलमग्न क्षेत्र संरक्षण योजनाएं जलसंचयन को बढ़ावा देती हैं। यह बांध, नहर, तालाब, जलाशय आदि का निर्माण करके वर्षा जल को संग्रहित करने की तकनीकों का उपयोग करती है। इससे जल की

उपयोगिता बढ़ती है और स्थानीय समुदायों को जल की आपूर्ति की जा सकती है।

जलमग्न क्षेत्र संरक्षण योजनाएं जल प्रबंधन को सुनिश्चित करने में मदद करती हैं। यह पानी के सही उपयोग, पुनर्नवीकरण और प्रदूषण कम करने के लिए उपयुक्त नीतियों के निर्धारण और कार्यक्रमों का आयोजन करती है। इससे जल संबंधी समस्याओं का समाधान होता है और पानी की बर्बादी से बचाव होता है। यह बाढ़, सूखा, जलप्रलय और जलवायु परिवर्तन से होने वाली संकटों के खिलाफ हमें तैयार रखती हैं। इन सभी कारणों से स्पष्ट है कि जलमग्न क्षेत्र संरक्षण हमारे पारितंत्र के लिए आवश्यक है। इसके माध्यम से हम प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा, सामाजिक और आर्थिक विकास, जलसंचयन और प्रबंधन और प्राकृतिक आपदाओं का नियंत्रण सुनिश्चित कर सकते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए जलमग्न क्षेत्र संरक्षण एक महत्वपूर्ण कदम है। यह क्षेत्र नदियों, झीलों, तालाबों, नहरों और जलमार्गों को संरक्षित रखने के लिए कार्य करता है। इसका मुख्य उद्देश्य जलमग्न के अपवाद से बचाव करना है, जिससे प्राकृतिक आपदाओं और जल-संकटों को रोका जा सके। जलमग्न संरक्षण के लिए बांधों, नहरों, जलाशयों और अन्य जल संरचनाओं का निर्माण और प्रबंधन किया जाता है जिससे न सिर्फ निर्माण कार्यों में रोजगार की अवसर सृजित होती है बल्कि इससे आय का स्रोत भी बनता है। यह योजनाएं स्थानीय लोगों को पानी के संचयन जल संरचना का निर्माण, पानी की पुनर्नवीकरण प्रक्रिया और जल संचयन तकनीकों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करती हैं। इससे स्थानीय समुदायों को जल संबंधी उद्योगों में रोजगार के अवसरों का लाभ मिलता है और वे अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं। इसलिए हमें जलमग्न क्षेत्र संरक्षण को महत्व देना चाहिए और इसके लिए सभी समुदायों को साथ मिलकर काम करना चाहिए। हमें जल संचयन पुनर्नवीकरण और जल संरचना के लिए नवाचारिक तकनीकों का उपयोग करना चाहिए ताकि हम अपने पानी के संसाधन को सुरक्षित रख सकें और समृद्धि के पथ पर आगे बढ़ सकें।

अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हम जलमग्न क्षेत्र संरक्षण को प्राथमिकता दें और इसे अपने पारितंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक मानें। हमें प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग के लिए जल संचयन विपणन और पुनर्नवीकरण को प्रोत्साहित करना चाहिए। साथ ही जलमग्न संरक्षण के लिए जनजागरण करना, योजनाएं बनाना और कार्यक्रम शुरू करना आवश्यक है। इसके माध्यम से हम अपने पानी के संसाधन को सुरक्षित रख सकते हैं और प्राकृतिक पर्यावरण का सम्पूर्ण ध्यान रख सकते हैं।

हिमालयी हॉर्नबीम : संरक्षण, वनस्पति विज्ञान और खतरों का अध्ययन

सुश्री ईनू बिदलान, सुश्री निशा एवं डॉ. संदीप शर्मा

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

हिमालयी हॉर्नबीम (*Carpinus viminea* Wall. exLindl.) एक मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है। इस वृक्ष को स्थानीय रूप से विभिन्न क्षेत्रों में खिड़की, चमखरिक, पुतली, कातुई के नाम से जाना जाता है। यह वृक्ष "बेटुलेसी" कुल से सम्बन्ध रखता है। हिमालयी क्षेत्रों में यह वृक्ष 1000-1300 मीटर की उंचाई तक पाया जाता है। इस वृक्ष की उंचाई लगभग 15-20 मीटर होती है।

जंगल में यह वृक्ष बान, देवदार, कैल, बरास आदि वृक्ष समूह के साथ पाया जाता है। छोटे पौधों की चिकनी भूरे रंग की छाल होती है, जो उम्र के साथ खुरदरी हो जाती है। इसकी पत्तियां छोटी और अंडाकार आकार की होती हैं, जिनमें सेरेटेड मार्जिन होते हैं। इस वृक्ष में नये पत्ते मार्च-अप्रैल में आते हैं। पत्तियां शरद ऋतु में पीले और नारंगी रंग में बदल जाती हैं, जिससे पेड़ की सौंदर्यता बढ़ जाती है। इस वृक्ष में बसंत ऋतु में फूल नई टहनियों पर उगने शुरू हो जाते हैं, जो हवा-परागण वाले होते हैं। परागण के बाद इन वृक्षों में फल विकसित होने लग जाते हैं। सुखी दोमट मिट्टी इसके लिये उपयोगी होती है। यह वृक्ष पूर्ण या आंशिक सूर्य के प्रकाश वाले स्थानों में अच्छी तरह से विकसित होता है।

वितरण: भारत में यह वृक्ष उत्तरी-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उतराखंड और उत्तर-पूर्वी राज्यों के नम हिमालयी समशीतोष्ण जंगलों में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह वृक्ष मण्डी, कुल्लू, शिमला इत्यादि जिलों के शीतोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है।

वनवर्धन गुण

प्रकाश: छोटे पौधे छाया वाले क्षेत्रों को पसंद करते हैं, जबकि पूर्ण विकसित वृक्षों को सीधी धूप से लाभ मिलता है।

सूखा एवं पाला: छोटे पौधे सूखा एवं पाला सहन नहीं कर पाते हैं, परंतु पूर्ण विकसित वृक्ष सूखे और पाले को सहन कर लेते हैं।

वायुरोधी: इस वृक्ष के जड़ों का जाल मिट्टी में अधिक फैला होता है तथा इसकी वायुरोधक क्षमता अच्छी होती है।

पुनरूत्पादन:

बीजों द्वारा: हिमालयी हॉर्नबीम के बीजों का एकत्रण शरद ऋतु के दौरान परिपक्व पेड़ों से किया जाना चाहिए। उन्हें कुछ महीनों के लिए कम तापमान (लगभग 4 डिग्री सेल्सियस / 39 डिग्री फारेनहाइट) पर स्तरीकृत किया जाना चाहिए ताकि उनकी निष्क्रियता को तोड़ा जा सके। स्तरीकरण के बाद, बीजों को नर्सरी बेड या कंटेनरों में अच्छी तरह से सुखी मिट्टी में बोया जा सकता है। अंकुरण आमतौर पर बसंत ऋतु में होता है और रोपाई को पर्याप्त रूप से बढ़ने के बाद उनको स्थायी स्थान पर प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

हिमालयी हॉर्नबीम का वृक्ष

कलमों के द्वारा: हिमालयी हॉर्नबीम को हार्डवुड कटिंग या लेयरिंग जैसी तकनीकों के माध्यम से भी तैयार किया जा सकता है। निष्क्रिय मौसम के दौरान ली गई हार्डवुड कटिंग का ट्रीटमेंट रूटिंग हार्मोन के साथ किया जा सकता है और एक उपयुक्त माध्यम में लगाया जा सकता है। परत बनाने में पेड़ की एक निचली शाखा को जमीन पर झुकाना, इसे छिलना और जड़ो को उगाने के लिए इसे मिट्टी में दवा देना चाहिए। एक बार जड़ें बन जाने के बाद, नए पौधे को मूल पेड़ से अलग किया जा सकता है और प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

पौधशाला तकनीक:

रोपण विधि : मूल पौधे से 4-6 इंच (10-15 सेमी) लंबी कलमें जो अभी तक कठोर नहीं हुई हैं, का चयन करें। स्वस्थ नोड के ठीक नीचे एक साफ कट बनाएं (वह बिंदु जहां पत्तियां तने से जुड़ी होती हैं)। तने की कलमों से निचली पत्तियों को हटा दें, शीर्ष पर केवल कुछ पत्तियां छोड़ दें। कलमों के कटे हुए छोर को रूटिंग हॉर्मोन पाउडर या जेल में डुबोएं। यह जड़ विकास को प्रोत्साहित करने और सफल रूटिंग की संभावनाओं में सुधार करने में मदद कर सकता है। रोपण ट्रे या छोटे बर्तनों को अच्छी तरह से सुखा कर उनमें माध्यम भरें। माध्यम को थोड़ा गीला करें ताकि यह नम हो लेकिन गीला न हो। पेंसिल या अपनी उंगली का सुनिश्चित करे कि कम से कम एक नोड सतह के नीचे हो। धीरे से इसे पकड़ने के लिए तने के चारों ओर मध्यम दबाएं। उन्हें उचित देखभाल प्रदान करें, जिसमें नियमित रूप से पानी देना, उचित प्रकाश स्तर और अत्यधिक तापमान से सुरक्षा शामिल है।

नर्सरी में तैयार पौधे

नर्सरी देखभाल: नर्सरी में पौधों की उचित देखभाल करें। सुनिश्चित करें कि उन्हें उनकी आवश्यकताओं के आधार पर पर्याप्त धूप या छाया मिलती है। नियमित रूप से पौधों को पानी दें और मिट्टी को नम रखें। पौधों को कीटों और बीमारियों से बचाएं।

उपयोग एवं संरक्षण:

हिमालयी हॉर्नबीम अपनी कठोर और सघन काष्ठ के लिए जाना जाता है, जिसका उपयोग निर्माण, उपकरण हैंडल और फर्नीचर जैसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है। हालांकि, इसके प्राकृतिक आवासों का तेजी से विनाश और इसके संसाधनों के अतिदोहन के कारण इस प्रजाति की आबादी और वितरण में गिरावट आई है। हिमालयी हॉर्नबीम के संरक्षण के लिए मौजूदा प्राकृतिक आवासों की सुरक्षा महत्वपूर्ण है। यह राष्ट्रीय उद्यानों, वन्यजीव अभयारण्यों और अन्य संरक्षित क्षेत्रों के निर्माण के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जहां प्रजातियां उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, अति-दोहन को रोकने के लिए इस वृक्ष की लकड़ी की अवैध कटाई पर निगरानी और नियंत्रण जरुरी है। इस प्रजाति की आबादी बढ़ाने के लिए पुनर्वनीकरण और वृक्षारोपण गतिविधियां भी आवश्यक हैं। इसके लिए स्थायी वानिकी पद्धतियों का उपयोग करके और रोपाई के विकास के लिए पानी, उर्वरक और छाया जैसे पर्याप्त संसाधन प्रदान कर सकते है। इसके संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी और जागरूकता महत्वपूर्ण कारक हैं। इस प्रजाति के पारिस्थितिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मूल्य के बारे में स्थानीय समुदायों को शिक्षित किया जा सकता है जिससे कि वे संरक्षण प्रयासों में शामिल हो सकें। इन रणनीतियों को लागू करके, प्रजातियों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए अपने पारिस्थितिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मूल्यों का आनंद लेने के लिए संरक्षित कर सकते है। *कार्पिनस विमिनिया* को विभिन्न तकनीकों का उपयोग करके नर्सरी में उगाया जा सकता है।

निष्कर्ष:

हिमालयी हॉर्नबीम के संरक्षण के लिए एक बहु-विषयक उपागम की आवश्यकता है। जिसमें पर्यावास संरक्षण, प्रबंधन और पुनर्स्थापना, जैसे उपाय शामिल होते हैं। संरक्षित क्षेत्रों का निर्माण और वनों की अवैध कटाई को रोकने के लिए सख्त कदम उठाये जा सकते है, जैसे कि वैकल्पिक आजीविका को बढ़ावा देना, इकोटूरिज्म, वृक्ष पर निर्भरता को कम करने और इसके संरक्षण के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना। इस प्रजाति के अस्तित्व को बचने के लिए कानूनों को सख्ती से लागू करना एक महत्वपूर्ण कदम हैं।

रोडोडेंड्रोन का वितरण और विभिन्न उपयोग

डॉ. विनोद कुमार

भा.वा.अ.शि.प.-हिमालय वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

रोडोडेंड्रोन प्रजाति की पहचान कार्ल लिनिअस ने 1753 में की थी जो *एरिकेसेई* परिवार से संबंध रखती है। रोडोडेंड्रोन शब्द दो ग्रीक शब्दों, रोडो (गुलाब) और डेंड्रोन (वृक्ष) से लिया गया है, इसी कारण इसे गुलाब का वृक्ष कहा जाता है।

विश्व में इसकी 1200 से अधिक प्रजातियाँ दर्ज की गई हैं, इनमें से ज्यादातर पश्चिमी चीन में चीन-हिमालयी क्षेत्रों की स्थानिक हैं। जीनस रोडोडेंड्रोन उत्तर-पश्चिमी और उत्तर पूर्वी भारत, नेपाल, भूटान, पूर्वी तिब्बत, उत्तरी म्यांमार, पश्चिमी और मध्य चीन एवं दक्षिण में थाईलैंड, वियतनाम, मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलीपींस द्वीप समूह के मध्य से दक्षिण-पूर्वी एशिया के एक विशाल क्षेत्र में फैला हुआ है। इसकी प्रजातियों की 90% से अधिक आबादी उत्तर-पश्चिमी हिमालय में केंद्रित है, जिसका विस्तार नेपाल, उत्तर-पश्चिमी भारत और पूर्वी तिब्बत, उत्तरी बर्मा पश्चिमी और मध्य चीन में है।

भारतीय रोडोडेंड्रोन का इतिहास वर्ष 1796 में कैप्टन हार्डविच की कश्मीर में शिवालिक पर्वत श्रृंखलाओं की यात्रा के साथ शुरू हुआ, जहां उन्होंने रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम प्रजाति की खोज की, हालांकि, 1848 और 1850 के बीच सिक्किम हिमालय में सर जोसेफ डी. हूकर की यात्रा ने सिक्किम में रोडोडेंड्रोन की प्रजाति का खुलासा किया। भारत में इसकी प्रजातियां उत्तर-पश्चिम और हिमालय, उत्तर-पूर्वी राज्यों, तमिलनाडु और केरल में दक्षिणी पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में पाई जाती है। यह प्रजाति प्रमुख रूप से अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल और हिमाचल प्रदेश में केंद्रित है। रोडोडेंड्रोन के 132 टैक्सा (82 प्रजातियां, 25 उप-प्रजातियां और 25 किस्में) भारत में पाए जाते हैं। इन में से 119 अरुणाचल प्रदेश में, सिक्किम में 42, पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग हिल्स में 19, नागालैंड में 11, मणिपुर में 10, उत्तराखंड में 6, मिजोरम में 4, मेघालय में 3, हिमाचल प्रदेश में 4 और तमिलनाडु में 1 पाए जाते हैं। हालांकि, दो बड़े पूर्वोत्तर राज्यों जैसे असम और त्रिपुरा में इनकी कोई भी प्रजाति दर्ज नहीं की गई है। लगभग

रोडोडेंड्रोन प्रजाति

14 प्रजातियां, 2 उप-प्रजातियां और 6 किस्में भारत की स्थानिक हैं। अरुणाचल प्रदेश में अनुमानित 9 टैक्सा, मणिपुर और नागालैंड में 6-6 प्रत्येक और मिजोरम, मेघालय और सिक्किम में प्रत्येक में 2-2 प्रत्येक टैक्सा इन पूर्वोत्तर राज्यों की स्थानिक हैं।

जीनस रोडोडेंड्रोन का निवास स्थान विभिन्न जलवायु क्षेत्रों की एक विस्तृत श्रृंखला के भीतर, उष्णकटिबंधीय वर्षा वन से लेकर उपनगरीय टुंड्रा और उष्णकटिबंधीय-क्षेत्र के उच्च शीर्ष तक है। रोडोडेंड्रोन सभी संभावित आवासों में जैसे कि दलदल, घास के मैदान, धारा के किनारे, पहाड़ों और चोटी पर, चट्टानों, घाटियों और नदी घाटियों में तथा पेड़ों पर भी उगते हैं। रोडोडेंड्रोन की अधिकांश प्रजातियां उच्च वर्षा, आर्द्र तापमान, उच्च कार्बनिक, अम्लीय मिट्टी वाले क्षेत्र में पाई जाती हैं। प्रजातियां काई के साथ घनिष्ठ रूप से बढ़ती हैं क्योंकि उनमें नमी की मात्रा बनी रहती है। अधिकांश वृक्षीय प्रजातियाँ उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में मिश्रित चौड़ी पत्ती वाले जंगल में पाई जाती हैं और कभी-कभी एरिकेसी परिवार की अन्य प्रजातियों के साथ-साथ शुद्ध जंगल में भी उगती हैं। समशीतोष्ण और अल्पाइन के क्षेत्रों में इसकी झाड़ीदार प्रजातियां 2,700-2,900 मीटर के बीच पाई जाती है और रोडोडेंड्रोन स्क्रब प्रजातियां 4,200-4,600 मीटर के बीच मुख्य रूप से उगती है। रोडोडेंड्रोन निवेल प्रजाति 5,000 मीटर से ऊपर की उंचाई पर पाई जाती हैं।

दुनिया भर में, रोडोडेंड्रोन अपने सुंदरता के लिए बहुत लोकप्रिय हैं और इनके सदाबहार पौधे एवं फूलों की सुंदरता अनायास पर्यटकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। *रोडोडेंड्रोन आर्बोरियम* नेपाल का राष्ट्रीय फूल है और इसे सैनिकों की वर्दी पर चित्रित किया गया है। भारत में, *रोडोडेंड्रोन कैम्पैनुलटम* और *रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम* क्रमशः हिमाचल प्रदेश और नागालैंड के राज्य फूल हैं। *रोडोडेंड्रोन निवियम* सिक्किम का राज्य वृक्ष है और *रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम* उत्तराखंड का राज्य वृक्ष है और म्यांमार के चिन राज्य का आधिकारिक फूल है। रोडोडेंड्रोन की प्रजातियां नार्वे और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में सड़क के किनारे एवेन्यू वृक्षारोपण के रूप में लगाए जाते हैं। रोडोडेंड्रोन खाद्य, फूल, धार्मिक, प्रतीकात्मक, काष्ठ-शिल्प, पैकेजिंग, ईंधन, कीटनाशक और बागवानी आदि में उपयोग किया जाता है।

रोडोडेंड्रोन पौधे को 'फाइटोकेमिकल की खान' कहा जाता है, क्योंकि इसके विभिन्न भागों में सुरक्षात्मक या रोग निवारक गुणों से युक्त विविध फाइटोकेमिकल पाये जाते हैं। रोडोडेंड्रोन पश्चिमी देशों में सबसे लोकप्रिय बागवानी पौधों में से एक है, लेकिन हिमालय में इसके वन लोगों के दैनिक जीवन में ईंधन एवं निर्माण के लिए लकड़ी, खाद्य, दवा और कई अन्य उपयोगों का स्रोत हैं। इस प्रजाति के विभिन्न औषधीय उपयोग हैं, जैसे पेचिश, तपेदिक के उपचार में और खांसी, सर्दी, क्रोनिक ब्रोन्काइटिस अस्थमा, आदि में। *रोडोडेंड्रोन सिनाबारिनम* के पंखुड़ियों का उपयोग प्रमुख लामाओं और तिब्बती वर्ग द्वारा जेम बनाने और फर्नीचर की वस्तुओं जैसे 'खुकरी' के हैंडल, गिफ्ट बॉक्स, गन-स्टॉक और पोस्ट आदि के लिए किया जाता है। *रोडोडेंड्रोन आर्बोरियम, रोडोडेंड्रोन बारबेटम, रोडोडेंड्रोन कैम्पैनुलटम, रोडोडेंड्रोन हॉजसोनी, रोडोडेंड्रोन सिलियाटम,* और *रोडोडेंड्रोन सिनाबारिनम* की लकड़ी का उपयोग चरवाहों द्वारा अपनी ग्रीष्मकालीन झोपड़ियों के आसपास निर्माण सामग्री और ईंधन की लकड़ी के रूप में किया जाता है। *रोडोडेंड्रोन एंथोपोगोन* की पत्तियों और टहनियों को जुनिपर्स के साथ मिलाकर मंदिरों और मठों में धूप के रूप में जलाया जाता है। रोडोडेंड्रोन पश्चिमी और पूर्वी हिमालय के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मूल तत्व प्रजातियों के रूप में कार्य करते हैं। वे पारिस्थितिक अखंडता और पारितंत्र की स्थिरता के रखरखाव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, साथ ही वन स्वास्थ्य के संकेतक के रूप में और आमतौर पर जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रति संवेदनशील होते हैं। रोडोडेंड्रोन उच्च ऊंचाई पर प्रमुख वृक्ष और झाड़ीदार प्रजातियां हैं और हिमालय में समृद्ध जैव विविधता के लिए एक महत्वपूर्ण घटक हैं।

मानवजनित दबाव और जलवायु परिवर्तन ने प्रजातियों के अस्तित्व को दांव पर लगा दिया है क्योंकि प्रजातियों का वितरण साल दर साल घट रहा है। मानव आबादी में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण खेती के लिए आवश्यक भूमि की मांग में वृद्धि, पशुधन में वृद्धि, सड़क नेटवर्क में तेजी, जलविद्युत परियोजनाओं के निर्माण आदि को जन्म दिया है। अंततः, बढ़ती आबादी और इसकी विविध मांगों ने रोडोडेंड्रोन प्रजाति पर समशीतोष्ण, अल्पाइन और उप-वनों में जबरदस्त दबाव डाला है। दुनिया में रोडोडेंड्रोन की सभी प्रजातियों में से लगभग 25% इसके जंगली आवास में विलुप्त होने के खतरे में हैं। रोडोडेंड्रोन-2011 की रेड लिस्ट के मूल्यांकन में एक प्रजाति को विलुप्त की सूची में अंकित किया गया है। 36 प्रजातियां गंभीर रूप से लुप्तप्राय, 39 प्रजातियां लुप्तप्राय, 241 प्रजातियां कमजोर, 66 प्रजातियां निकट संकटग्रस्त, 290 प्रजातियां कम चिंतनीय और 483 प्रजातियां डेटा डेफीसिएंट के वर्ग में अंकित किया गया है। कुल मिलाकर 715 प्रजातियों को एक या अधिक संरक्षण संबंधी समस्याओं से ग्रसित माना गया है।

अधिकांश अध्ययनों से पता चला है कि बहुसंख्यक रोडोडेंड्रोन अत्यधिक दोहन, विकासात्मक गतिविधियों और जलवायु परिवर्तन के कारण प्रभावित हैं। पूर्व अध्ययनों ने यह स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि कई रोडोडेंड्रोन प्रजातियों में उनके बीज की गुणवत्ता, व्यवहार्यता और अंकुरण एक चिंताजनक विषय हैं क्योंकि कई पर्यावरणीय और जैविक कारक अंततः अंकुरण की महत्वपूर्ण प्रक्रिया, रंगरूटों की उपलब्धता, स्थापना और विकास को बाधित करते हैं। प्राकृतिक वातावरण में रोडोडेंड्रोन बीजों का अंकुरण आम तौर पर कम होता है क्योंकि वे बहुत तेजी से अंकुरण क्षमता खो देते हैं। रोडोडेंड्रोन का सतत उपयोग बहुत महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि रोडोडेंड्रोन तभी संरक्षित किया जा सकता है जब इसे सामाजिक-आर्थिक विकास और स्थानीय आबादी की आजीविका सुरक्षा से जोड़ा जाए। स्थानीय समुदाय वनों की रक्षा करेंगे, यदि वे यह महसूस करते हैं कि काटे गए पेड़ों के एकमात्र मूल्य के बजाय कई मूल्यों के लिए वन उनके लिए अधिक मूल्यवान हैं।

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया (तरूल) एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा

श्री एल. आर. लक्ष्मीकांत पण्डा

भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

परिचयः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया जिसे आमतौर पर सिंगली मिंगली, किंस और तरूल के नाम से भी जाना जाता है डायोस्कोरेसी परिवार का सदस्य है। सामान्य रूप से इसे जंगली जमीकंद भी कहा जाता है।

यह उच्च हिमालयी क्षेत्रों में उगने वाली एक जड़ी बूटी है। जिसका तना बांयी ओर मुड़ा हुआ एवं एकांतर पर्णवृन्त पत्तियों वाला होता है। फूल एक्सलेरी स्पाइक्स पर उगते हैं। जिसमें नर स्पाइक्स 8 से 40 से.मी. लम्बा और पुंकेसर 6 से.मी. लम्बा होता है। मादा स्पाइक्स 15 से.मी. लम्बे तथा 4-6 बीजों वाले होते हैं। बीज पंखयुक्त होते हैं। प्रकंद मिट्टी के भीतर सतही, क्षैतिज, कंदमय एवं भूरे रंग का होता है। यह मुख्यतः दारूहल्दी एवं *प्रिन्सीपिया यूटेलिस* (भेंकल) की झाड़ियों के नीचे पाया जाता है।

वितरणः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया भारत, नेपाल, भूटान, तिब्बत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन, थाईलैंड, वियतनाम, कम्बोडिया, अफगानिस्तान एवं लाओस का मूल प्रजाति है। जो समुद्रतल से 450-3100 मी. तक की ऊंचाई पर पाया जाता है। यह उत्तर पश्चिमी हिमालय में कश्मीर, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश से पूर्व की ओर नेपाल तथा चीन तक 1000 से 3500 मी. तक की ऊंचाई पर पाया जाता है।

पौधों को उगाने की विधिः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया समशीतोष्ण क्षेत्र में ह्यूमस एवं जैविक तत्वों से भरपूर दोमट मिट्टी में एवं नम एवं छायादार स्थानों में अच्छी तरह से उगता है। आमतौर पर इसके 1-2 कलियों वाले 50-60 ग्राम कंद के टुकड़ो का बड़े पैमाने पर प्रसार के लिये व्यवसायिक रूप से उपयोग किया जाता है। यह आमतौर पर बरसात के मौसम में लगाया जाता है।

कटाई एवं प्रसंस्करणः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया के पौधों से प्रकन्दों की प्राप्ति पौधे के 3 वर्ष के उपरांत या तने के भूमिगत होने के उपरांत की जाती है। नवंबर से मार्च के दौरान कलियों के उभरने (प्रसुप्त अवस्था) से पहले यह माना जाता है कि *डाईस्कोरिया डेल्टोडिया* के पौधे में उपस्थित रसायन डायोसजेनिन की मात्रा उच्चतम होती है। इसलिए इस समय को इसकी फसल प्राप्त करने का सर्वोत्तम समय माना जाता है। प्रकन्दों का संग्रहण मुख्य रूप से ठंडे, नम एवं छायादार स्थानों से किया

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया के प्रकन्द

जाता है। खुदाई के उपरांत प्राप्त प्रकन्दों को बहते पानी में धो कर इनकी सफाई की जाती है। फिर खुले स्थान पर छाया में कुछ दिनों के लिए इन्हे सुखाया जाता है। इसके पश्चात सूखे प्रकन्दों को नमीमुक्त थैलों में भंडारण हेतु रखा जाता है।

लोकवानस्पतिकी उपयोगः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया के प्रकन्द दस्त, पेट दर्द, घाव, जलन, पाचन विकार जैसे विभिन्न रोगों के उपचार हेतु उपयोग किया जाता है। यह भी माना जाता है कि, इसके प्रकन्द में एंटीऑक्सीडेंट, रोगाणुरोधी, हाईपोग्लाईसेमिक आदि गुण भी पाये जाते हैं।

आर्थिक उपयोगः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया अपने वनस्पति रसायनों के कारण जाना जाता है। जिसका बहुत अधिक वाणिज्यिक महत्व है। इसका उपयोग हर्बल, ऐलोपैथिक एवं अन्य औषधीय प्रणालियों में किया जाता है। स्टेरायडल सैपोजेनिन के स्त्रोत के रूप में इसे दुनियाभर में ख्याति प्राप्त है। इसमें उपस्थित स्टेरायडल सैपोजेनिन (डायोस्जेनिन) कई स्टेरॉयड हार्मोन (जैसेः-प्रोजेस्टेरोन, कॉर्टिकोस्टेरॉइड्स तथा एलाबॉलिक स्टेरायड) आदि को बनाने हेतु अत्यधिक उपयोगी है। विभिन्न औषधीय उद्योगों, सौंदर्य प्रसाधन सामग्री बनाने में इसके उपयोग से इसका अत्यधिक दोहन हो रहा है।

जैव-विविधता के खतरेः

औषधीय जड़ी-बूटियों को उनके मूल आवास से अप्रत्यक्ष रूप से संग्रहण करना जैव-विविधता के प्रमुख खतरों में से एक है। इनकी अत्यधिक मांग होने के कारण इनका अनियंत्रित मात्रा में संग्रहण किया जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड एवं जम्मू-कश्मीर में इनसे प्राकृतिक औषधी निर्माण हेतु इनके अत्यधिक दोहन के कारण इनकी संख्या में भारी कमी देखी गयी है। *डाईस्कोरिया डेल्टोडिया* के प्राकृतिक आवास से स्थानीय लोगों द्वारा व्यापार एवं घरेलू उपयोग हेतु अत्यधिक दोहन के कारण यह प्रजाति खतरे की श्रेणी में आ गयी है।

संरक्षण की स्थिति एवं कार्यनीतियांः

डाईस्कोरिया डेल्टोडिया एक बहुत ही महत्वपूर्ण संकटग्रस्त औषधीय पादप है। जिसे संरक्षण एवं व्यापारिक स्तर पर इसकी खेती किये जाने की आवश्यकता है। इसलिए यदि इस क्षेत्र के किसान इस प्रजाति के संरक्षण हेतु इसकी खेती की पहल करते हैं, तो इस बहुमूल्य प्रजाति को अत्यधिक दोहन से बचाया जा सकता है। एवं स्थानीय लोगों में इसके संरक्षण हेतु जागरूकता कार्यक्रम चलाकर इसे बचाया जा सकता है।

ठंगी: हिमालयन क्षेत्रों की एक बहुउपयोगी प्रजाति

श्री शिवांशु गौतम एवं डॉ. संदीप शर्मा
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

भारतीय हेजलनट, जिसे ठंगी के नाम से भी जाना जाता है, एक प्रमुख वनस्पति है जो भारत के विभिन्न हिस्सों में पाई जाती है। ठंगी एक मीठे स्वाद और क्रिस्पी टेक्स्चर के साथ अपने उत्कृष्ट पौष्टिकता के लिए मशहूर है। यह एक सम- शीतोष्ण पर्णपाती वृक्ष है। ठंगी का वृक्ष मुख्य रूप से जंगली इलाकों में पाया जाता है। इसका उच्चतम उत्पादन भारत के कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम जैसे पहाड़ी राज्यों में होता है। ठंगी भारतीय बाजार में एक महत्वपूर्ण मेवा है और इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न इलाकों में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है, चंबा के पांगी घाटी में इसे "ठंगी", शिमला में "भोटिया बादाम", कुल्लू में "उर्मुनी", लाहौल-स्पीती में "शरोली" तथा किन्नौर में "शरोड़" के नाम से जाना जाता है। इस वृक्ष के आस – पास अन्य तरह के वृक्ष भी पाए जाते है जैसे कि ओक, फर, स्प्रूस, बेटुला इत्यादि। ठंगी वृक्ष बेतुलाअसै परिवार से सम्बन्ध रखता है। ठंगी में पौष्टिकता की भरपूर मात्रा होती है जो विभिन्न पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है। यह विटामिन-ई, विटामिन-बी, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, आयरन, फोस्फोरस, जिंक, फोलिक एसिड और अन्य मिनरल्स का अच्छा स्रोत है।

ठंगी वृक्ष

ठंगी फल

ठंगी गिरी

विवरण:

ठंगी एक पर्णपाती वृक्ष है जिसकी ऊंचाई 18 मी. 25 मी. तक हो सकती है। इसकी छाल भूरे रंग की होती है। इसकी पत्तियां अंडाकार तथा हरे रंग की होती है। ठंगी में नर पुष्प तथा मादा पुष्प एक ही वृक्ष में पाए जाते हैं। मादा पुष्प आकार में छोटे तथा नर पुष्प आकार में बड़े होते हैं। काष्ठफल (नट) भूरे रंग की तथा गोलाकार होती है। फूल मार्च- अप्रैल के महीने में आते हैं। फल/काष्ठफल को अगस्त- सितम्बर में एकत्र किया जाता है।

प्रसार की प्रक्रिया:

1) कलमें : जड़ की कलमों द्वारा ठंगी का पौधा उगाया जा सकता है। इसे उगने के लिए अनुकूल वातावरण तथा विभिन्न प्रकार के रसायन की जरुरत होती है। कलमों को 1000 पी.पी.एम इण्डोल एसिटिक एसिड (IAA) में 24 घंटे तक उपचार दें तथा उसके बाद उन्हें नर्सरी बेड में लगा दें तथा निरन्तर उनकी देखभाल करें। पौधे तैयार होने के बाद उन्हें पौधारोपण के लिए स्थानांतरित कर दें।

2) बीज : ठंगी का प्राकृतिक पुनर्जनन बीजों द्वारा बहुत ही कम है। जैसे ही ताजा पका हुआ फल पेड़ से गिरता है ग्रामीण या जंगली जानवर उसे जमीन से उठा कर खा लेते हैं जिससे उस क्षेत्र में प्राकृतिक पुनर्जन नहीं हो पाता है। बीज द्वारा पौधा उगने के लिए हमें ताजे फल लेने है तथा उन्हें 2 –3 महीने तक 4° से. तापमान में रख दें। इसके पश्चात जिब्रेल्लिक हॉर्मोन का उपचार 16 से 24 घंटे तक दें। इसके पश्चात बीज को ग्रीनहाउस बेड में लगायें तथा उसकी देखभाल करें। जब पौधे थोड़े बड़े

हो जाएं उसके पश्चात उन्हें वृक्षारोपण के लिए बाहरी पर्यावरण में स्थानांतरित कर दें।

उपयोग :

1) ठंगी भारतीय रसोईघरों में एक महत्वपूर्ण घटक है और इसे विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है। यह ताजगी और तंदुरुस्ती का प्रतीक है और आपको ऊर्जा देता है। ठंगी को सीधे खाने के रूप में भी खाया जा सकता है और पौष्टिक माना जाता है। इसका स्वाद मीठा होता है। इसे मसालेदार और मीठे व्यंजनों, मिठाइयों, बेकरी उत्पादों और चॉकलेट में भी शामिल किया जाता है।

2) ठंगी में पौष्टिकता की भरपूर मात्रा होती है जो विभिन्न पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है। यह विटामिन-ई, विटामिन-बी, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, आयरन, फोस्फोरस, जिंक, फोलिक एसिड और अन्य मिनरल्स का अच्छा स्रोत है। इन पोषक तत्वों का संयोजन शरीर के लिए महत्वपूर्ण होता है और मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में मदद करता है। इसमें एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा भी उच्च होती है जो शरीर को रोगों और जीवाणुओं से लड़ने में मदद करते हैं।

३) ठंगी के सेवन से शरीर का मेटाबॉलिज्म बढ़ता है और इससे वजन घटाने में मदद मिलती है। यह आपको भूख कम करके उचित भोजन पर नियंत्रण बनाने में मदद करता है।

4) इसका सेवन खून में लिपिडों की मात्रा को नियंत्रित करता है और हृदय स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है। ठंगी में प्राकृतिक वसा की मात्रा उच्च होती है जो आपको उर्जा प्रदान करती है और साथ ही साथ शरीर के लिए आवश्यक है।

5) ठंगी का उपयोग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए किया जाता है। यह तनाव को कम करने, मस्तिष्क स्वास्थ्य को बढ़ाने और नींद को सुधारने में मदद करता है।

6) इसका आंतरिक उपयोग शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाता है और आपको विभिन्न बीमारियों से बचाने में मदद करता है।

7) ठंगी के पौधों का उपयोग वनस्पति चिकित्सा में भी किया जाता है। इसकी पत्तियाँ, छाल और बीजों को विभिन्न औषधीय गुणों के कारण इस्तेमाल किया जाता है। इसे एंटीऑक्सीडेंट, एंटीइंफ्लेमेटरी, विषाणुरोधी, दर्दनाशक, प्रतिरक्षा क्षमता बढ़ाने और रक्त परिसंचार को बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। इसकी छाल का तेल रक्त प्रणाली को मजबूत बनाता है और खून के संचरण को सुधारता है।

8) ठंगी की पत्तियों का उपयोग ग्रामीण अपने पशुओं के चारे के रूप में भी करते हैं।

निष्कर्ष :

ठंगी या भारतीय हेजलनट एक प्रमुख वनस्पति है जो हिमालय के ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। यह विभिन्न पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है और शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में मदद करता है। इसका उपयोग विभिन्न रूपों में भोजन, औषधियों और स्नैक्स के रूप में किया जाता है। ठंगी का उत्पादन देश की आर्थिक विकास और किसानों की आय के लिए महत्वपूर्ण है और इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। ठंगी एक महत्वपूर्ण वनस्पति है जो देश की संपदा और स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण योगदान देती है। ठंगी के वृक्षों की संख्या बढ़ाने और इसकी वृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए सरकारी और गैर सरकारी संगठनों के द्वारा उद्योगों और किसानों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। ठंगी का उत्पादन महानगरों की आर्थिक विकास को बढ़ाने, रोजगार सृजन करने और ग्रामीण क्षेत्रों को आर्थिक समृद्धि प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

आंध्र प्रदेश की मुख्य स्थानिक प्रजातियां और उनका संरक्षण

डॉ. पंकज सिंह, सुश्री मेरी चन्दना, डॉ. स्वपनेंदु पट्टनायक, श्री के. चन्द्र प्रकाश एवं सुश्री शुभी कुल्श्रेष्ठा

भा.वा.अ.शि.प.-वन जैव-विविधता संस्थान, हैदराबाद

प्रायः देखने में आता है कि कुछ प्रजातियाँ के पौधें वनों में हर जगह नहीं मिलतें हैं बल्कि वह एक विशिष्ठ क्षेत्र में ही पाए जाते हैं। इसका प्रमुख कारण है कि वह उस क्षेत्र की जलवायु में ही उगना पसंद करते हैं। ऐसे ही पौधों को स्थानिक प्रजाति के रूप में जानते हैं। चूंकि प्रजाति के स्थानिक होने के कारण इनकी संख्या भी सीमित रूप से वनों में होती है। अतः इन प्रजातियों के वृक्षों की *एक्स-सीटू* और *इन-सीटू* संरक्षण की आवश्यकता है ताकि हमारी जैवविविधता में यह हमेशा मौजूद रहें। इन स्थानिक प्रजातियों के पौधों से प्राप्त होने वाले वनोत्पाद जैसे बीज, फूल, पत्ती, फल, इत्यादि वहाँ रहने वाले आदिवासी और स्थानीय लोगों के लिए खाद्य एवं औषधियों के रूप में लाभकारी होते है। इस प्रकार यह न केवल स्थानिक जैवविविधता अपितु वहाँ के स्थानीय लोगों के लिए भी इन प्रजातियों का संरक्षण और उनकी संख्या में वृद्धि करना अति आवश्यक है। आंध्र प्रदेश, जोकि पूर्वीघाट का एक महत्वपूर्ण भाग में आता है, जिसमें कई स्थानीय प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इन्ही में से कुछ स्थानिक प्रजातियों पर वन जैवविवधता द्वारा उनके संरक्षण पर कार्य किया जा रहा है जिसकी संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित है (तालिका संख्या-1)।

तालिका संख्या-1 आंध्रा प्रदेश की मुख्य स्थानिक प्रजातियाँ एवं आईयूसीएन में स्थिति

प्रजातिओं के नाम	आवास	उपयोगिता भाग	आईयूसीएन लाल सूची में स्थिति
टर्मिनेलिया पेलिडा ब्रैंडिस	वृक्ष	फल/छाल	असुरक्षित श्रेणी
टेरोकार्पस सेंटीलिनस एल. एफ.	वृक्ष	हार्डवूड/पत्ती	संकटग्रस्त श्रेणी
शाइजीजियम अल्टरनिफोलियम वाल्प.	वृक्ष	फल/बीज/छाल/पत्ती	संकटग्रस्त श्रेणी
शोरिया तंबुगिया रॉक्सबी	वृक्ष	बीज/छाल/पत्ती	संकटग्रस्त श्रेणी
पिंपिनेला तिरुपतिनसिस बलाक्र. और सुब्रम.	हर्ब	सम्पूर्ण पौधा	संकटग्रस्त श्रेणी

1. *टर्मिनेलिया पेलिडा* :

यह एक कॉम्ब्रेटेसी परिवार का सदाबहार वृक्ष है (चित्र-1)। यह मुख्य रूप से आंध्रा प्रदेश के कडप्पा और चित्तूर में पायी जाने वाली सेशाचलम पहाड़ियों तक ही सीमित है। इसे तेलगु में 'तेला करका' के नाम से जाना जाता है। पत्तियां छोटी, कोरियसियस, शाखाओं के सिरों पर गुच्छेदार, फूल टर्मिनल स्पाइक्स में होते हैं एवं फल ओबोवॉइड होते हैं। फल प्राय: सितम्बर से दिसम्बर तक मिलते है। इस वृक्ष के फलों के गुणो की तुलना *टर्मिनेलिया चेबुला* या *टर्मिनेलिया बेलेरिका* के फलों से की जाती है जिसका आयुर्वेदिक महत्व है। स्थानीय लोग इसके फल को दस्त, मधुमेह, खांसी, जुकाम, सूजन, बवासीर, बुखार और अल्सर के उपचार में करते है। इसका प्रसार बीजों द्वारा होता है। हालांकि इन बीजों के अंकुरण आसानी से नहीं हो पाता है जिसकी वजह बीज पर कठोर आवरण होता है। प्राय: बीजों को गर्म पानी में भिगोने या इसे सैंड पेपर से रगड़ने की सलाह दी जाती है ताकि इनका अंकुरण आसानी से हो सके। अंकुरण 45-90 दिनो में शुरू हो जाता है और अंकुरण 30-50 प्रतिशत तक होता है। इस महत्वपूर्ण स्थानिक वृक्ष के फलों का असतत दोहन होने के कारण यह आईयूसीएन की लालसूची में असुरक्षित श्रेणी में आ गई है। इस प्रजाति के संरक्षण हेतु वर्तमान में संस्थान द्वारा बीजों का संग्रहण कर पौधे बनाने का प्रयास जारी है।

चित्र-1 *टर्मिनेलिया पेलिडा* का फल के साथ वृक्ष और फल, स्रोत: पंकज सिंह

2. *टेरोकार्पस सेंटीलिनसः*

यह फेबेसी कुल का वृक्ष मुख्यतः अपनी लाल रंग की लकड़ी के कारण मशहूर है जोकि आंध्र प्रदेश की एक मुख्य स्थानिक प्रजाति है। इसे हिन्दी में रक्तचंदन और तेलगु में रक्तगंधमू के नाम से जाना जाता है। इसका वितरण कड़पा, चिततूर और नेल्लोर के वनों में मिलता है। प्राय: परिपक्व वृक्ष की हर्टवुड लाल रंग की होती है एवं इस हर्टवुड का बनना भी विशेष जलवायु पर निर्भर करता है। इस हर्टवुड की अत्याधिक मांग होने के कारण

चित्र-2 *टेरोकार्पस सेंटीलिनस* का वृक्ष एवं बीज, स्रोत: एस.पटनायक

इनका वनों से दोहन हो रहा है। जिसके कारण इस प्रजाति को आईयूसीएन की लाल श्रेणी में रखा गया है। हर्टवुड के आलावा इसकी पत्तियां भी एक प्रमुख चारे के रूप में उपयोग की जाती हैं। पारंपरिक रूप से हर्टवुड का उपयोग मिचली और आँख की बीमारियों को भी ठीक करने में किया जाता है। हर्टवुड में ज्वर नाशक, सूजनरोधी, गुण भी पाये जाते हैं। लाल लकड़ी से लाल रंग की सैटेलीन डाई पाई जाती है जिसका उपयोग रंग भरने, दवाई एवं खाद्य पदार्थों में किया जाता है। पीले रंग के फूल अप्रैल से जून और फल जनवरी से फरवरी तक आते हैं। इसके संरक्षण हेतू संस्थान द्वारा आंध्र प्रदेश से कई जर्मप्लास्म एकत्र किए गए हैं और उनका बैंक संस्थान में बनाया गया है ताकि इन पर निरंतर अध्ययन किया जा सके। इसका प्राकृतिक प्रसार बीजों द्वारा होता है। समान्यत: बीजों को पानी में भिगोकर एक दिन रखने सलाह दी जाती है ताकि इनका अंकुरण आसानी से हो सके। संग्रहीत बीजों को एक साल के भीतर बोना सबसे अच्छा है और ऊंचे नर्सरी बेड में बोया जाता है। अंकुरण 10-20 दिनो में शुरू हो जाता है तथा इनके अंकुरण में 20 प्रतिशत से लेकर 60 प्रतिशत तक का अंतर देखने को मिलता है। अतः एक मुख्य स्थानिक प्रजाति होने के कारण इसके संरक्षण के साथ इसकी गुणवत्ता पूर्ण लकड़ी उत्पादन पर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है।

3. *शाइजीजियम अल्टरनिफोलियम* :

यह एक मायरटेसी कुल का छोटा वृक्ष है जो अपने वनोत्पाद जैसे लकड़ी, खाने योग्य फल और बीज जिसका औषधीय गुण होता है। यह भी एक विशेष और स्थानीय वृक्ष है जो पूर्वी घाट के दक्षिण में स्थित वेंकटेश्वर नेशनल पार्क, राजमपेट, कड़पा और नेल्लोर में प्रायः घाटी, पठारी एवं ढलान वाले स्थानों में मिलता है। तेलुगु में मोगी या अडविनेरेडु के रूप में जाना जाता है। इसके फल, छाल और पत्तियों का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में होता है। फलों के रस का प्रयोग पेट दर्द और अल्सर को ठीक करने के लिए किया जाता है। फलों के गूदे का बाहरी उपयोग गठिया दर्द को कम करता है। फलों के गूदे और बीजों के टिंचर में एंटीडायबिटिक गुण होते हैं। बीज का उपयोग मधुमेह के उपचार में होता है। इसकी लकड़ी का उपयोग फर्निचर और कृषि के उपकरण बनाने में होता है। इसका प्रवर्धन बीजों द्वारा होता है और इनके बीज जुलाई- अगस्त तक ही मिलते है। कभी-कभी वृक्षों में बीज नहीं आता है या फिर इसमें कीट संक्रमण लग जाता है, जिससे इसकी संख्या में गिरावट देखी गई है। इतना ही नहीं इसके बीजों का मधुमेह में उपचार हेतु असतत संग्रहण भी इसकी संख्या के गिरावट का कारण है। इन कारणों से इस वृक्ष को आईयूसीएन की लाल सूची में रखा गया है। इसके बीज डालने के बाद इसका अंकुरण 30-60 दिन तक होता है और अंकुरण प्रतिशत भी 30-40 है। संस्थान द्वारा इसके जर्म प्लाज्म का संरक्षण और इसकी संख्या में वृद्धि पर शोध किया जा रहा है।

चित्र-3 *शाइजीजियम अल्टरनिफोलियम* का वृक्ष और फल, स्रोत: एस.पटनायक

4. *शोरिया तंबुगिया* :

यह स्थानिक प्रजाति का वृक्ष डिप्टरोकार्पेसी परिवार से संबंधित है और वेलिगोंडा पहाड़ियों और सेशाचलम तक ही सीमित है। बड़े पेड़, पत्तियां अंडाकार, अंतिम पुष्पगुच्छों में फूल, पुंकेसर लगभग 30, कैप्सूल 2 सेमी लंबा, अंडाकार, पंख फल से 2-3 गुना लंबे। इस वृक्ष के सभी हिस्से औषधीय रूप से महत्वपूर्ण हैं। पारंपरिक रूप से आदिवासी लोगों द्वारा पत्तियों के रस का उपयोग बच्चों के कान दर्द में राहत के लिए करते हैं क्योंकि इसके रस में सूजन-रोधी और एंटी-नोसिसेप्टिव गुण होती है। छाल को अल्सर के उपचार में उपयोग करते है। इसकी पत्ती या छाल के पाउडर से बना एक कप काढ़ा पीने से जोड़ों के दर्द से राहत मिलती है। इसके वृक्षों से प्राप्त राल का उपयोग मंदिरों में करते है। इसका प्रसार बीजों द्वारा ही होता है। हालांकि इसका प्राकृतिक पुनर्जनन आसान नहीं है। इसका कारण यह है कि बड़े पैमाने पर फूल मौजूद तो होते है लेकिन फूलों में कोई परागकोष नहीं होता एवं फल पंखों वाले होते हैं जो 20-30 दिनों में पक कर उड़ जाते हैं। कभी- कभी वृक्ष पर बीज भी नहीं बनते। बीजों में प्रसुप्तावस्था का अभाव होता है, कुछ बीज पेड़ से गिरने से पहले ही अंकुरित हो जाते हैं और कुछ बीज पेड़ से गिरते ही अंकुरित हो जाते हैं। यह शोरिया प्रजाति में आम है। संरक्षण हेतु बीजों को एकत्र

करने के तुरंत बाद बोना जरूरी है अन्यथा अंकुरण नहीं होता है। बीज मई-जुलाई के बीच में मिलते है। अत: असमान्य प्राकृतिक पुनर्जनन, निवास स्थान का विनाश, असतत संग्रहण, जलवायु परिवर्तन और वनाग्नि से हुए हानि के कारण से इस प्रजाति को आईयूसीएन की लाल सूची में रखा गया है।

चित्र-4 *शोरिया तंबुगिया* का वृक्ष, छाल (स्रोत: एस.पटनायक) और पुष्प (स्रोत: कुमारी, 2016)

5. *पिंपिनेला तिरुपतिनसिस* :

यह एक विशेष और स्थानिक औषधीय शाक है तथा एपीऐसी कुल से संबधित है। यह पूर्वी घाट के तिरुपति पहाड़ियों तक ही सीमित है। इसके सम्पूर्ण पौधे का औषधीय उपयोग है जो रोगाणुरोधी, हाइपो ग्लाइसेमिक, एंटीसेप्टिक, एनाल्जेसिक गुण रखता है। वानस्पतिक तोर पर यह एक 45-55 से. मी. लम्बा शाक है जिसे तेलगु में कोंडा कोथमीरा या जंगली धनिया के नाम से भी जाना जाता है। इसके पुष्प छोटे एवं सफ़ेद रंग के होते हैं जो संयुक्त रूप में लगे रहते हैं । बीज परिपक्व के बाद फ़ैल जाते हैं जिससे बीज का संग्रहण करना कठिन हो जाता है। सामान्यतः इसका प्रसार बीज व कंद से होता है। वर्तमान में इन पोधों के संरक्षण हेतु इन पौधो के कंद का संग्रहण एनएमपीबी के अनुसार करके संस्थान में एक जर्मप्लाज्म बैंक बनाने का प्रयास किया गया है। यह आईयूसीएन की लाल सूची के अनुसार एक संकटग्रस्त प्रजाति है। जिससे इसके संरक्षण की भी अत्यधिक आवश्यकता है। इसके संकटग्रस्त होने का मुख्य कारण इसके आवास का नुकसान, जंगल में आग लगना और इसका असतत संग्रहण प्रमुख कारण है। अतः भविष्य में इनके संरक्षण की भी नितांत आवश्यकता है।

चित्र-5 *पिंपिनेला तिरुपतिनसिस* का शाक, पुष्प और संस्थान में बने पौधे, स्रोत: पंकज सिंह

औषधीय गुणों से भरपूर हिमालयन सरू (*कप्रेसस टोरुलोसा*)

श्री पंकज कुमार, श्री विक्रम चौहान एवं डॉ. वनीत जिश्टु

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

कप्रेसस टोरुलोसा, जिसे आमतौर पर हिमालयन सरू के रूप से भी जाना जाता है । पश्चिमी हिमालय में भारतीय उपमहाद्वीप के पहाड़ी व उत्तरी क्षेत्रों में पाये जाने वाले सरू के पेड़ की एक प्रजाति है। हिमाचल प्रदेश में यह मुख्यत: शिमला, कुल्लू, मंडी और लाहौल-स्पीति आदि जिलों में पाया जाता है। इसके अलावा ये उत्तराखंड राज्य में भी पाया जाता है। हिमालयन सरू, कप्रेससेई (साइप्रेस परिवार) परिवार से संबन्धित है। सरु का पेड़ एक महत्वपूर्ण पेड़ है, जिसकी पत्तियों और बीजों से एक सुगंधित तेल निकाला जाता है । यह सरू का तेल बहुत गुणकारी होता है, इसे शंकुधारी और पर्णपाती क्षेत्रों के सुई-धार वाले सरु के पेड़ से प्राप्त किया जाता है। यह अफ्रीका, ग्रीस, तुर्की, उत्तरी अमेरिका, साइप्रस और सीरिया आदि देशों के उत्तर में पाया जाने वाला स्थानीय पेड़ है। सरु के पेड़ को एक औषधीय पेड़ माना जाता है जो कई स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करता है। इसके तेल में एंटीसेप्टिक, एंटी-स्पास्मोडिक, एंटी-बैक्टीरियल, उत्तेजक, हेमोस्टैटिक, वासोकोनस्ट्रिक्टिंग और एंटी-रूमेटिक आदि गुण पाये जाते है। फार्माकोलॉजिकल उपयोगों के अलावा, यह बड़े पैमाने पर परफ्यूमरी और साबुन बनाने तथा कॉस्मेटिक सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है।

सरू का पेड़

हिमालयन सरू का पेड़ लगभग 45-50 मीटर लंबा होता है, जिसकी मोटाई 3.5 मीटर आवक्ष ऊंचाई (डीबीएच) तक हो सकती है। शाखाएँ शिथिल या सघन रूप से व्यवस्थित, गोल, अंतिम वाले लटकती या अनियमित रूप से फैली हुई, पतली और 1-1.4 एम.एम. व्यास की होती हैं। सरु के बीज शंकु गहरे भूरे रंग के होते हैं जब ये परिपक्व होते हैं। इसके बीज मोटे तौर पर अंडाकार या लगभग गोलाकार, 1.2-2 x 1-1.8 सेमी; शंकु आकृति 10-12, शीर्ष पर एक प्रमुख उम्बू या मुकरू के साथ खंडित होते हैं। हिमालय सरू, हिमालय में 1800-2800 मीटर की ऊंचाई पर, कश्मीर से नेपाल और भूटान तक पहाड़ों में पाया जाता है।

सरु की पत्तियाँ

सरु के गोल आकारित कोन

सरु के औषधीय गुण :

सरू का तेल एक हर्बल एंटी-माइक्रोबियल एजेंट है और इसका उपयोग संक्रामक बीमारियों के रोकथाम में किया जा सकता है। यह अपने एंटीसेप्टिक गुणों के कारण आंतरिक और बाहरी घावों के उपचार के लिए भी शक्तिशाली है। इसमें अल्फा-पीनिन और सेड्रोल होता है तथा कैम्फीन की उपस्थिति के कारण यह एंटी-सेप्तिक के रूप में काम करता है। एक अध्ययन के अनुसार, सरू के तेल का उपयोग उत्पादों के स्व-आयु के विस्तार के लिए एक प्राकृतिक स्रोत के रूप में भी किया जाता है। इसका उपयोग घावों, मुंहासों, फुंसी, त्वचा के फटने, खरोंच और विसर्प के इलाज के लिए भी किया जाता है। सरु का पेड़ एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होता है। इसकी शाखाओं और फलों में एंटीऑक्सिडेंट और विशेष रूप से, एंटी-ग्लाइकेशन रेजिडेंस होते हैं। जो मधुमेह और हृदय संबंधी जटिलताओं की रोकथाम और उपचार में प्रभावी हैं। सरू का तेल विष को हटाने में सहायता करता है और शरीर के हर्बल डिटॉक्सिफायर का काम करता है। यह एक मूत्रवर्धक के रूप में, यह शरीर को अतिरिक्त पानी और नमक से छुटकारा पाने में मदद करता है, इससे द्रव प्रतिधारण की संभावना होती है। यह पसीना भी बढ़ाता है, इसलिए शरीर से प्रदूषकों को हटाने में सहायता करता है। यह रक्त को विषमुक्त करता है, त्वचा के छिद्रों को साफ करता है और आपको मुंहासों और अन्य त्वचा की परेशानियों से बचाने में मदद करता है। सरू का तेल मांसपेशियों की ऐंठन और मासिक धर्म में ऐंठन के इलाज के लिए उपयोगी है। यह मेनोपॉज़ल और पुट-रजोनिवृत्त महिलाओं में हार्मोनल स्तरों को भी संतुलित करता है। इसके अलावा सरू का तेल स्ट्रेस्ड लेग सिंड्रोम से राहत दिलाने में भी कारगर है। सरू का तेल ऐंठन को कम करता है, रक्त परिसंचरण को बढ़ाता है और राहत प्रदान करता है।

सरु का पेड़ न केवल वनों को बढ़ाने में उयोगी है अपितु इसकी लकड़ी भी उपयोगी होती है। सरु का पेड़ एक महत्वपूर्ण पेड़ होने के साथ-साथ यह अपने औषधियों गुणों से भी भरपूर है। सरु के पेड़ पर भारत में भी काफी अनुसंधान किए जा रहे है। इसको संरक्षित एवं सुरक्षित करने के लिए और अधिक शोध किया जाना आवश्यक है।

करोंदा फल का उपयोग और लाभ

डॉ. एस. सी. बिस्वास एवं डॉ. एस. एन. मिश्रा

भा.वा.अ.शि.प.-उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान , जबलपुर

करौंदा जिसका वैज्ञानिक नाम *कैरिसा कैरेंडस* है, एपोसाईनेसी कुल का सदस्य है । यह एक बहुवर्षीय – सदाबहार पौधा है, जो कि भारत में मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और हिमालय के क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी झाड़ियों की बढ़वार ऊपर की तरफ लगभग 3-4 मीटर की ऊँचाई तक होती है। करौंदा एक गैर-पारंपरिक फल है जो मुख्यतः वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाया जाता है। करौंदे के पौधे लगाने के दो वर्ष बाद फल देने लगते हैं। करौंदे की 4 किस्में होती हैं- हरे रंग के फलों वाली, गुलाबी रंग वाली, सफेद रंग के फलों वाली और नरेंद्र ।

कैरिसा कैरेंडस से विभिन्न तरह के पोषक तत्व की पूर्ति की जाती है जैसे कि इसमें पाया जाने वाला आयरन खून की कमी वाले रोगी के लिए लाभदायक होता है। इसमें विटामिन 'सी' भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो शरीर में ऊतकों की वृद्धि और मरम्मत के लिए सबसे अच्छा होता है। प्राय: इसका प्रयोग स्कर्वी के प्रभाव को ठीक करने के लिए भी किया जाता है। यह दस्त के दौरान आराम प्रदान करता है। यह पित्त को रोकने के लिए लिवर द्वारा पित्त के अत्यधिक स्राव से बचाता है। इसमें पाया जाने वाला एनाल्जेसिक तत्व दर्द से राहत प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है। करोंदा फल का शरीर में कृमिनाशक प्रभाव होता है जो परजीवी कृमियों को बाहर निकालता है। यह प्रकृति में ज्वरनाशक है जो बुखार को कम करता है। यह शरीर के लिए कार्डियो टॉनिक है। साइटोटोक्सिक विशेषताओं के कारण, यह कैंसर और ट्यूमर कोशिकाओं के विकास को रोकता है। इसलिए यह कैंसर और ट्यूमर के रोगियों के लिए लाभकारी है। अवसादग्रस्त रोगियों में यह चिंता को कम करता है। यह पेट से संबंधित समस्याओं को दूर रखने के लिए पेट को स्वस्थ रखता है। इसका उपयोग पेट दर्द के दौरान भी किया जाता है। इसमें थर्मोजेनिक विशेषता होती है जो वजन कम करने में शक्तिशाली होती है। इस प्रकार, यह मोटापे के लिए एक प्रभावी दवा है। यह आंतरिक रक्तस्राव रोकता है। यह खांसी को कम करता है। यह अपच और पाचन विकारों से बचने के लिए पाचन

तंत्र को शक्ति प्रदान करता है। यह रक्त से अशुद्धियों को दूर करता है। यह रक्त शर्करा के स्तर को कम करने और मधुमेह को ठीक करने में सहायक है। पत्तियां, फल और बीज लेटेक्स का उपयोग संधिशोथ, एनोरेक्सिया, अपच, शूल, हेपेटोमेगाली, स्प्लेनोमेगाली, बवासीर, हृदय रोग, एडिमा, एमेनोरिया, बुखार और तंत्रिका संबंधी विकारों के इलाज के लिए किया जाता है। सिद्ध औषधीय प्रणाली में कृमि संक्रमण, जठरशोथ, जिल्द की सूजन, स्प्लेनोमेगाली और अपच को ठीक करने के लिए फलों के बीज और लेटेक्स का उपयोग किया जाता है। रक्तचाप को कम करने के लिए भी पौधा उपयोगी है। भूख और पाचन में सुधार के लिए करोंदा के ताजे फलों का रस 10-15 मि.ली. की मात्रा में सेवन किया जाता है। पेशाब में कठिनाई के इलाज के लिए जड़ का काढ़ा 30-40 मिलीलीटर की खुराक में दिया जाता है। हृदय की मांसपेशियों को मजबूत करने के लिए करोंदा के फल का ताजा रस प्रतिदिन 15-20 मिलीलीटर की मात्रा में सेवन किया जाता है।

करोंदा के तने की छाल को 40-50 मिलीलीटर की मात्रा में विभिन्न चर्म रोगों के उपचार में दिया जाता है। इसके उपचार के लिए इसके पत्तों या छाल से तैयार पेस्ट को ताजे घावों पर लगाया जाता है। जड़ का पेस्ट मधुमेह के अल्सर पर लगाया जाता है। रुक-रुक कर होने वाले बुखार, डायरिया, मुंह में सूजन और कान में दर्द होने पर पत्तों के काढ़े को महत्व दिया जाता है। कुष्ठ रोग को ठीक करने के लिए इसके पत्तों का अर्क बाहरी रूप से लगाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले विभिन्न पोषक तत्वों और इसके औषधीय गुणों के कारण भा.वा.अ.शि.प.-उ.व.अ.सं. ने विभिन्न शोधो के उपरांत कई मुल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किए है। इन उत्पादो के नाम और उन्हे तैयार करनें की संक्षिप्त विधि निम्नानुसार हैः

करोंदा के उत्पादः

करोंदे का अचार : सबसे पहले 1 कि.ग्रा. धुले करोंदे लें, फिर सारे करोंदों को बीच से दो भागों में काटकर बीजें अलग कर लें और फिर करोंदों में नमक मिलाकर एक जार में 3-4 दिन के लिए धुप में रख दें ।

4 दिन के बाद एक बर्तन लें और उसमें 500 मि.ली. सरसों के तेल को अच्छी तरह गैस पे गरम करें और गैस बंद कर दें । फिर गरम तेल में लहसुन की कलियाँ, ज़ीरा, सरसों, सौंफ, बड़ी इलाइची, हल्दी, लाल मिर्च पाउडर, अचार मसाला डालकर अच्छी तरह मिला लें, करोंदे के अचार तैयार है। फिर ठंडा होने पर एक एयर टाइट जार में अचार को भर लें ताकि सालों तक अचार खराब न हो।

करोंदा कैंडी : 1 कि.ग्रा. पके करोंदे लें, उन्हें अच्छी तरह धुलने के बाद दो हिस्सों में काट लीजिये और बीजों को अलग कर लीजिये। एक बर्तन में पानी उबाल लें और सारे करोंदों को 2 मिनट के लिए उबलते पानी में डालकर छान लीजिये। फिर एक बड़े बर्तन में इन करोंदों को फैला लें और 350 ग्राम शक्कर को करोंदों में अच्छी तरह मिला दें। फिर 350 ग्राम शक्कर लें और उससे करोंदों को अच्छी तरह ढक दें और एयर टाइट पैक कर के 3 दिन के लिए रख दीजिये। 3 दिन के बाद जब आप इसे खोलेंगे तो देखेंगे की सारी शक्कर पूरी तरह घुलकर करोंदों में अच्छी तरह मिल चुकी है। अब एक छन्नी की सहायता से करोंदों को छान लीजिये और एक ट्रे में फैलाकर 2 - 3 दिन के लिए धूप में सुखाये।

धूप में सुखाये जाने के बाद कैंडीज़ को एक एयर टाइट जार में भर लें और 100 ग्राम शक्कर का पाउडर उस जार में डालकर अच्छी तरह मिला दें। इससे कैंडीज़ एक दूसरे से चिपकेगी नहीं। अब एक छन्नी की सहायता से करोंदों को छान लीजिये और एक ट्रे में फैलाकर 2 - 3 दिन के लिए धूप में सुखाये। धूप में सुखाये जाने के बाद कैंडीज़ को एक एयर टाइट जार में भर लें और 100 ग्राम शक्कर का पाउडर उस जार में डालकर अच्छी तरह मिला दें। इससे कैंडीज़ एक दूसरे से चिपकेगी नहीं।

करोंदा चूर्ण : चूर्ण बनाने के लिए 1 कि.ग्रा. करोंदों को धुलकर, काटकर, बीजों को निकाल कर करोंदों को धूप में सूखा लीजिये या फिर ओवन में ड्राई कर लीजिये।

जब कई दिनों के बाद करोंदे अच्छी तरह सूख जाए तब इन्हें अच्छी तरह मिक्सर में पीस ले और साथ में 800 ग्राम शक्कर, काला नमक, जीरा पाउडर, अजवाइन पाउडर, सादा नमक, काली मिर्च पाउडर, इलाइची पाउडर मिलाकर अच्छी तरह पीस लें। अंत में पीसे हुए मिश्रण को छन्नी की सहायता से 3 - 4 बार छानकर एयर टाइट जार में भर लें।

करोंदा की खट्टी मीठी गोली : सबसे पहले 1 कि.ग्रा. करोंदों को धुलकर, काटकर, बीजों को निकाल लें। अब करोंदों को एक बर्तन में पानी में 10 - 15 मिनट के लिए उबाल लें। उबालने के बाद इसे मिक्सर में अच्छी तरह पीस लें और फ्राइंग पैन में निकालकर, धीमी आंच पर गैस पर रखें। लगातार चम्मच चलाते हुए इसमें 750 ग्राम गुड़, जीरा पाउडर, अजवाइन पाउडर, सादा नमक, काली मिर्च पाउडर, इलाइची पाउडर, हींग, काला नमक, सौंठ, अमचूर और एक नींबू का रस डालकर अच्छी तरह मिलाते रहें। जब मिश्रण पूरी तरह भूरे रंग में आ जाये तब गैस बंद कर दें और मिश्रण को ठंडा होने दें। ठंडा होने के बाद मिश्रण की छोटी छोटी गोलिया बना लें और सारी गोलियों को एक एयर टाइट जार में भर लीजिय। अंत में 100 ग्राम चीनी का पाउडर जार में डालकर अच्छी तरह मिला दें जिससे कि शक्कर पाउडर गोलियों के चारो ओर अच्छे से लग जाये ताकि गोलिया एक दूसरे से चिपके नहीं।

चेरी करोंदा : 1 कि.ग्रा. पके करोंदे लें, उन्हें अच्छी तरह धुलने के बाद चाकू से हल्के हल्के कट लगा लीजिये। अब एक बर्तन में 1 लीटर पानी लें और 800 ग्राम शक्कर डालकर उबालें और गाढ़ा लाल रंग मिलाये। फिर 10 मिनट के बाद उबलती हुई चाशनी में करोंदों को 4 - 5 मिनट के लिए डाल दें। अब इसे छान लें और ठंडा होने पर एयर टाइट जार में पैक करके रखें।

कुसुम (*श्लाईचेराओलिओसा*) नर्सरी एवं पुनर्जनन तकनीक

डॉ. प्रवीण रावत, श्री शीशराम डंगवाल, डॉ. मनीषा थपलियाल* एवं डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा*
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला
**भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून*

कुसुम श्लाईचेरा जीनस में पायी जाने वाली एक मात्र प्रजाति और सैपिन्डेसी परिवार का एक सदस्य है। बहुउद्देश्यीय प्रकृति, पोषक तत्वों और औषधीय गुणों के कारण कुसुम काफी लोकप्रिय वृक्ष है। यह आकार में काफी विशाल होते हैं, जिससे छः माह पश्चात लगभग 35-60 कि.ग्रा. लाख प्राप्त किया जा सकता है, जो कि एक बहुत ही अच्छा एवं फायदेमंद व्यवसाय है। कुसुम लाख उत्पादन हेतु प्रयोग किये जाने वाले अन्य पेड़ों की अपेक्षा उच्चतम गुणवत्ता वाला माना जाता है इसकी उत्पादन क्षमता भी अन्य से काफी अधिक है। इसके बीजों से निकलने वाले तेल का उपयोग प्रसाधन सामग्री बनाने में किया जाता है। कुसुम के बीज व छाल पोषक तत्वों व औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। आयुर्वेद में इनका उपयोग कृमिरोग, मुँहासे, खुजली, मलेरिया, पेचिश, गठिया, बालों के झड़ने के उपचार तथा सूजनरोधी, अल्सररोधी, कैंसररोधी और जीवाणुरोधी के रूप में किया जाता है।

प्राकृतिक तौर पर यह पौधा भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण पूर्व एशिया में पाया जाता है। भारत में यह उप हिमालयी क्षेत्रों, सतलज से नेपाल की सीमा तक, छोटा नागपुर, मध्य भारत, प्रायद्वीपीय क्षेत्रों तथा उत्तराखंड में दून घाटी, हिमालय की तलहटी व आसपास की शिवालिक पहाड़ियों आदि में समुद्र तल से लगभग 1200 मी. तक की ऊँचाई तक पाया जाता है। बढ़ती आबादी, मवेशियों की संख्या, ईंधन व चारे की मांग के चलते इस पौधे के प्राकृतिक आवासों से अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। साथ ही प्राकृतिक क्षेत्रों में वृद्ध पेड़ों की अधिकता और इसके विशिष्ट अंकुरण व्यवहार के कारण यह प्रजाति दिन -प्रतिदिन घटती जा रही है। वर्तमान अध्ययन कुसुम के प्रभावी नर्सरी तकनीक विकसित करने हेतु किया गया है, जिससे इसके गुणवत्तापरक पौधे तैयार करने, जरूरत पड़ने पर इन्हें इनके प्राकृतिक आवास में पुनर्स्थापित करने तथा कृषिवानिकी व अन्य गैर- वन क्षेत्रों में पौधरोपण हेतु सम्मिलित किया जा सके।

बीज प्रसंस्करण और निष्कर्षण: शाखाओं सहित एकत्र किये फलों को अच्छी तरह से पकने के बाद बीजों को गूदेदार फलों से हाथ से निकाला जाता है। इसके बाद फलों के गूदे को हटाने के लिए नल के पानी से 2-3 बार धोकर, 1 प्रतिशत सोडियम हाइपोक्लोराइड घोल के साथ बीजों की सतह को जीवाणुरहित किया जाता है। उसके बाद बीजों की सतह से सोडियम हाइपोक्लोराइड को हटाने के लिए बीजों को आसुत जल से तीन बार फिर से धोया जाता है। इसके उपरांत बीजों को कम तापमान एवं कम आर्द्रता में (15 डिग्री सेल्सियस व 15 प्रतिशत आर्द्रता) में तब तक सुखाया जाता है जब तक बीजों की नमी 16 प्रतिशत तक न आ जाये।

बीजों की आकृति व संख्या: कुसुम के बीज दिखने में भूरे, चिकने व चमकीले रंग के होते हैं। इनका आयाम 14 मि.मी. × 10 मि.मी. × 8 मि.मी. तक होता है। एकत्रण के समय बीज में नमी की मात्रा लगभग 25.70-26.88 प्रतिशत तक होती है तथा प्रति किलोग्राम बीजों की संख्या लगभग 1486-1833 तक होती है। इसी प्रकार, फल और बीज में वजन का अनुपात लगभग में 4.35-6.77 तक होता है।

बीज जीवक्षमता आंकलन हेतु टेट्राजोलियम परीक्षण:

सामान्यतः किसी बीज को जीवक्षम तब माना जाता है जब वह जीवित होता है और संभावित रूप से अंकुरण में सक्षम होता है। जीवक्षमता उस स्तर को दर्शाती है जिस तक एक बीज जीवित है, चयापचय रूप से सक्रिय हो और अंकुरण और अंकुर वृद्धि के लिए आवश्यक चयापचय प्रतिक्रियाओं को उत्प्रेरित करने में सक्षम एंजाइम उसके अन्दर मौजूद हों। इसके विपरीत यदि अनुकूल वातावरण मिलने या किसी भी प्रकार का बीजोपचार करने के उपरांत भी बीज अंकुरित होने में असमर्थ होते हैं तो उन्हें अजीवक्षम बीज कहा जाता है। कुसुम के बीज अपने विशिष्ट अंकुरण व्यवहार के

कुसुम का वृक्ष व पहचान के लिए फील्ड से एकत्र किया गया हर्बेरियम नमूना

लिए जाने जाते हैं ये बीज जीवक्षम होने के बावजूद एवं अनुकूल वातावरण मिलने पर भी अंकुरित होने में असमर्थ होते हैं जिसका प्रमुख कारण है इनका निष्क्रिय या सुसुप्त अवस्था में होना। अतः ऐसी स्थिति में यदि यह पता लगाना हो कि एकत्र किये गए बीज जीवक्षम हैं या सुसुप्त इनका टेट्राजोलियम परीक्षण आवश्यक होता है। इस परीक्षण के लिए कुसुम के 100 बीजों को 0.5 प्रतिशत 2-3-5 ट्राइफेनिल टेट्राजोलियम क्लोराइड के घोल में 48-72 घंटे तक डुबाकर किसी अँधेरे स्थान पर रखा जाता है। इस दौरान बीज के सभी जीवित ऊतक, एंजाइम डीहाइड्रोजीनेज द्वारा उत्प्रेरित एच ट्रांसफर प्रतिक्रियाओं के कारण 'फॉर्माज़ोन' में परिवर्तित होते हैं और लाल रंग दर्शाते हैं साथ ही रंगहीन भाग मृत बीजों को इंगित करता है। अंततः बीजों की संख्या प्रतिशत में व्यक्त की जाती है। सामान्यतः उच्च गुणवत्ता वाले ताजे एकत्रित बीजों की जीवक्षमता लगभग 95 प्रतिशत तक होती है।

बीज बुवाई व पूर्व उपचार: कुसुम के बीज एकत्रण के समय सुसुप्त अवस्था में होते हैं, इसलिए बुवाई पूर्व इनको उपचारित किया जाना आवश्यक होता है। इनमें सामान्यतः दो प्रकार की सुसुप्त अवस्था पायी जाती हैं। पहली, इसके बीजो का बाहरी आवरण काफी सख्त होता है तथा यह जल के प्रति अपारगम्य होते हैं। जिसके कारण इनमें अंकुरण नहीं होता। दूसरा इन बीजों को ऑफ्टर राइपेनिंग यानि अंकुरण से पहले 2 माह (60 दिन) 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर शुष्क अवस्था (16 प्रतिशत नमी के साथ) रखना आवश्यक होता है। शुष्क अवस्था के पश्चात् ही इनमें भ्रूण (Embryo) के अंकुरण की प्रक्रिया पूरी होती है। यह अवस्था बीजों में जिबरेलिन (Gibberellin) की अल्प उपस्थिति के कारण होती है।

नर्सरी तकनीक: बीजों को बुवाई से पहले ऑफ्टर राइपेनिंग तथा उसके उपरान्त खरोचन (Scarification) विधि से उपचारित किया जाना अति आवश्यक है। कुसुम के बीजों की बुवाई पौधशाला में मिट्टी, रेत व गोबर की खाद (अनुपात 1:1:1)मिला कर बनायी गयी समतल क्यारियों में किया जाता है, नर्सरी क्यारियों को हर दिन पानी दिया जाना आवश्यक है। ऐसा करने पर 45-50 दिन बाद नर्सरी में 60 प्रतिशत तक का अंकुरण मिल जाता है। इसके विपरीत पानी की कमी होने पर बीजों का अंकुरण अच्छे से नहीं होता व बीजों के द्वितीय सुसुप्त अवस्था में जाने की आशंका बढ़ जाती है।

नर्सरी में पौधे का विकास: बुवाई के 3 महीने बाद पौधा लगभग 33 से.मी. की ऊंचाई व 3 मि.मी. तक का कॉलर व्यास प्राप्त कर लेता है डेढ़ साल बाद में यह पौधा लगभग 60 से.मी. की ऊंचाई व 18 मि.मी. तक का कालर व्यास प्राप्त कर फील्ड में पौधरोपण के लिए तैयार हो जाता है।

निष्कर्ष: कुसुम, दून घाटी के शुष्क पर्णपाती जंगलों की प्रमुख और बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियों में से एक है। इसमें चारे के उत्पादन, लाख पालने, ईंधन और कृषि उपकरणों के लिए लकड़ी के उत्पादन की उच्च क्षमता है। यह वन-गुर्जर (घुमंतू आदिवासी) समुदाय के लोगों के लिए चारे, फल और ईंधन की लकड़ी के महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। अत्यधिक दोहन के कारण इस प्रजाति पर बढ़ रहे संकट को कम करने व प्राकृतिक आवास में इसकी आबादी को फिर से बहाल करने की आवश्यकता है। इस प्रजाति में औषधीय व पोषक तत्वों में सुधार व मूल्य संवर्धन तथा उच्च गुणवत्ता वाली नई किस्मों को विकसित करने की पर्याप्त संभावनायें हैं। इसलिए प्राकृतिक क्षेत्रों में इस प्रजाति की पुनर्बहाली और वृक्षारोपण कार्यक्रम विकसित करने के लिए इसके बीज परिपक्वता, बीज संग्रहण, निष्कर्षण, प्रसंस्करण और अंकुरण के बारे में पूरी जानकारी इस लेख के माध्यम से दी गयी है, जो कि विभिन्न पौधारोपण कार्यक्रमों व संरक्षण के लिए गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री तैयार करने में कारगर साबित होगी।

क्वेरकस ग्लौका (बानी) : हिमालयी क्षेत्रों की एक महत्त्वपूर्ण चारा वृक्ष प्रजाति

सुश्री यामिनी, डॉ. प्रवीण रावत, डॉ. संदीप शर्मा एवं श्री पंकज कुमार

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

बान यानी क्वेरकस, भारत ही नहीं अपितु विश्व के कई देशों मे पाये जाने वाले वृक्षों में एक बहुत महत्वपूर्ण प्रजाति है। विश्वभर में बान की लगभग 35 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में *क्वेरकस* की लगभग 6 प्रजातियाँ पायी जाती है, जिसमे से "*क्वेरकस ग्लौका*" एक महत्वपूर्ण प्रजाति है। इसे स्थानीय भाषा में "बानी" कहा जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम *क्वेरकस ग्लौका* है तथा यह फैगेसी परिवार का एक सदस्य है। यह एक मध्यम आकार का सदाबहार पेड़ है जिसकी ऊंचाई लगभग 10 से 15 मीटर तक होती है। इसके तने बेलनाकार व काफी बड़े होते हैं। *क्वेरकस ग्लौका* या बानी को आमतौर पर रिंग ओक या जापानी ब्लू ओक के नाम से भी जाता है। बानी उत्तर-पश्चिमी हिमालय की एक महत्वपूर्ण चारा प्रजाति है, जो कि स्थानीय निवासियों को उनके पशुओं के लिए गर्मी के शुष्क दिनों में पोषक तत्वों युक्त चारा उपलब्ध करवाता है।

भौगोलिक वितरण:

यह भारत, चीन, जापान, नेपाल, पाकिस्तान और वियतनाम में प्राकृतिक तौर पर पाया जाता है। यह संकीर्ण, गहरी नदी घाटियों के नम और छायादार क्षेत्रों में समुद्र तल से लगभग 900-1800 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्र में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में बानी (*क्वेरकस ग्लौका*) शिमला, सोलन, मंडी, चंबा, कुल्लू और सिरमौर आदि जिलों में पाया जाता है।

क्वेरकस ग्लौका का वृक्ष

पत्तियों की संरचना:

बानी (*क्वेरकस ग्लौका*) एक सदाबहार वृक्ष है। पत्तियाँ सरल ऊपर और नीचे दोनों ओर से हरे रंग की होती हैं। ये अंडाकार, संपूर्ण और पेटियोलेट प्रकार की होती हैं, जो कि स्थानीय लोगों व पशुपालकों द्वारा अपने पशुओं को चारे के रूप में खिलाने के काम में आती हैं। इसकी टहनियां ईंधन के रूप में उपयोग की जाती हैं। बानी में अप्रैल-मई के महीनों में फूल आते हैं।

क्वेरकस ग्लौका की पत्तियां

बीज:

इसमें छोटे-छोटे बीज विकसित होते हैं। बानी की यह प्रजाति कई जंगली जानवरों के लिए भोजन प्रदान करने वाले फल (एकोर्न) का उत्पादन करती है। बानी के बीज अक्टूबर-नवंबर में पकते हैं जो कि देखने में अंडाकार होते हैं। इसके बीज अप्रभावी प्रकृति (रिकैल्सीट्रेंट) किस्म के होते हैं और इसलिए ये अपनी व्यवहार्यता जल्दी खो देते हैं,जिसके कारण इनको लंबी अवधि के लिए संग्रहित नहीं किया जा सकता।

बीज

पत्तियां

उपयोग:

क्वेरकस ग्लौका उत्तर-पश्चिमी हिमालय की एक महत्वपूर्ण चारा वृक्ष प्रजाति है। इसकी लकड़ी एक मूल्यवान प्रकाष्ठ है तथा स्थानीय लोगों द्वारा इसका प्रयोग कृषि उपकरण बनाने, पुल और घरों के निर्माण आदि में किया जाता है, साथ ही इसकी सूखी टहनियाँ जलावन के काम आती हैं।

क्वेरकस ग्लौका (बानी) में संकट:

पिछले कुछ दशकों में अत्याधिक दोहन और चुनिंदा लॉगिंग के कारण इसके पुनर्जनन व संरचना पर काफी दुष्प्रभाव पड़ा है। प्राकृतिक पुनर्जनन बानी की इस प्रजाति में एक गंभीर समस्या है। प्राकृतिक पुनर्जनन काफी कम जगहों पर पाया जाता है जिसका मुख्य कारण मानव जनित गतिविधियाँ, औद्योगीकरण और शहरीकरण है। प्राकृतिक क्षेत्रों में इसके बीजों का प्रसार (Dispersal) के बाद अनुकूल परिस्थिति न मिलने पर इसके बीज तुरंत अपनी जीवन क्षमता (viability) खो देते हैं, जिसके कारण इसके पुनर्जनन में अधिक समस्याएँ आती हैं।

निष्कर्ष:

क्वेरकस ग्लौका (बानी) अपनी विशिष्ट साइट आवश्यकताओं के कारण हिमालय में कुछ चुनिन्दा स्थानों पर ही पाया जाता है, जिसके कारण वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इस प्रजाति पर काफी कम जोर दिया गया है। अत: *क्वेरकस ग्लौका* की आर्थिक-सामाजिक व पारिस्थितिक उपयोगिता को समझते हुए इस के संरक्षण की दिशा में कदम बढ़ाया जाना बहुत आवश्यक है, साथ आम जन को इस महत्वपूर्ण प्रजाति के संरक्षण के विषय में जागरूकता कार्यक्रम की आवश्यकता है, जिससे कि इस बहुमूल्य धरोहर को आने वाले समय के लिए संरक्षित किया जा सके।

महत्वपूर्ण औषधीय प्रजातिः *पेरिस पोलीफिला* (सतुवा)

डॉ.स्वर्णलता, डॉ. शिव पॉल एवं डॉ. तनय बर्मन
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय:

मनुष्य के जीवन में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये वन ही हैं जो ईंधन, प्रकाष्ठ, चारा, खाद्य फल एवं सब्जियां,दवाएं और कई अन्य वाणिज्यिक वन उत्पाद प्रदान करते हैं। वर्तमान में लगातार बढ़ती जनसंख्या के चलते वनों से प्राप्त होने वाले संसाधनों मुख्यतः आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय प्रजातियों का अधिकतम तथा अरक्षणीय तरीके से दोहन हो रहा है। सालम पंजा, अतीश, कडू, सतुवा, रतन जोत,खुरासैनयू अजवाइन, नाग छतरी, वन ककड़ी, मेधा, महामेधा, जटामांनसी, वृद्धि, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, भूतकेशी, क्षीर काकोली, काकोली एवं निहानी उत्तर पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र की मुख्य औषधीय पौध प्रजातियाँ हैं जिनका वर्तमान में अत्यधिक दोहन हो रहा है। सतुवा एक महत्वपूर्ण औषधीय पौध प्रजाति है जो आधुनिक एवं पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में विभिन्न रोगों के उपचार हेतु उपयोग की जाती है। इसका वैज्ञानिक नाम *पेरिस पोलीफिला* है। इसका जैनेरिक नाम 'पेरिस' का अर्थ है बराबर तथा स्पीशीज़ नाम 'पोलीफिला' का अर्थ है बहुत सी पत्तियां। इसे आमतौर पर हिमालयन पेरिस, लव एप्पल एवं सतुवा के नाम से जाना जाता है। चीन में इसे सात पत्ते एक फूल के नाम से भी जाना जाता है। यह चीन, भारतीय उपमहाद्वीप और इंडोचीन क्षेत्र की मूल प्रजाति है। यह प्रजाति भारत में उत्तर पूर्वी एवं पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती है तथा मेलेनथीएसी परिवार से संबंध रखती है। इस प्रजाति में अत्यधिक औषधीय गुण होने के कारण इसकी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजार में अत्यधिक मांग है जिस कारण इसके वितरण क्षेत्रों में स्थानीय समुदायों द्वारा इसे जंगलों से एकत्रित कर आय के लिये बेचा भी जाता है। इसकी लगातार बढ़ती वाणिज्यिक मांग के चलते वर्तमान में इस प्रजाति के व्यावसायिक संग्रह में भारी वृद्धि हुई है तथा इसके अरक्षणीय तरीके से संग्रह के कारण इसके वितरण क्षेत्रों में इनकी प्राकृतिक संख्या में भारी गिरावट आयी है।

विवरण:

पेरिस पोलीफिला एक प्रकंद जड़ी बूटी है जिसकी ऊंचाई 40-75 सेंटीमीटर होती है। इसकी पत्तियाँ अण्डाकार, आयताकार, चार से नौ के समूह में, गहरे हरे रंग की होती हैं, जो डंठल के साथ तने के शीर्ष पर एक चक्कर में व्यवस्थित होती हैं। इसका फूल हल्के हरे-पीले रंग का होता है जो तने के शीर्ष पर अकेला होता है। इसका फल (बेरी) अंडाकार व गोल होता है जो पकने पर लाल रंग का हो जाता है। इसके एक फल में 20-50 बीज होते हैं। बीजों पर लाल एरिलका आवरण होता है। फूल अप्रैल-मई के महीने में आते हैं और जुलाई-सितंबर में फल परिपक्व होते हैं। इसके बीज कई वर्षों तक निष्क्रिय रह सकते हैं। अंकुर पहले वर्ष में प्रजनन नहीं करते हैं और पौधों को प्रजनन परिपक्वता में कम से कम 3 साल लगते हैं। मधु एवं अन्य, 2010 के अनुसार इसके प्राकृतिक आवासों में इसके बीज अंकुरण की दर 29% है।

वितरण एवं आवास:

पूरे विश्व में जीनस पेरिस की लगभग 24 प्रजातियाँ पायी जाती हैं विश्व में *पेरिस पोलीफिला* का वितरण सीमित है तथा यह प्रजाति बांग्लादेश, उत्तरी अमेरिका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, भारत, पाकिस्तान, चीन, भूटान, म्यांमार, चीन, नेपाल, थायलैंड, ताइवान एवं वियतनाम में पायी

पेरिस पोलीफिला

जाती है। भारत में पेरिस की सिर्फ 2 प्रजातियां (*पेरिस पोलीफिला* एवं *पेरिस थिबिटिका*) ही पायी जाती है। भारत में यह प्रजाति हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, असम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और मणिपुर राज्यों एवं जम्मू कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में 1800-3300 मीटर की ऊंचाई पर शीतोष्ण वन क्षेत्रों में पायी जाती है। ये अक्सर मिश्रित वनों, बाँस के वनों, झाड़ियाँ, नम घास के मैदान और नदी के किनारे पाये जाते हैं। यह प्रजाति अच्छी नमी, छायादार और उच्च ह्यूमस वाली मिट्टी में उगना पसंद करती है।

उपयोगिता:

प्रकंद इस प्रजाति का मुख्य उपयोगी भाग है जिसका व्यापार भी होता है। नेपाल में इसका उपयोग सांप और कीट के जहर के उपचार तथा पशुओं के डायरिया और पेचिश की समस्या को ठीक करने के लिए किया जाता है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में इस प्रजाति का उपयोग मुख्यतः पीड़ा को कम करने, सूजन, मांसपेशियों का दर्द, खांसी, सांप एवं अन्य जहरीले जीवों के काटने, सिरदर्द, जलन, घाव, कटने-जलने, अल्सर, त्वचा रोग, पेट दर्द, हड्डी के फ्रैक्चर, ट्यूमर, पेचिश, बुखार, उल्टी, गैस्ट्रिक समस्याएं, नींद नहीं आने, भोजन की विषाक्तता और टाइफाइड के उपचार के लिए किया जाता है। इसके अलावा, इस प्रजाति से प्राप्त स्टेरायडल सैपोनिन का उपयोग प्राकृतिक पृष्ठसक्रिय कारकों, खाद्य परिरक्षकों और एंटी ऑक्सीडेंट के रूप में किया जाता है।

संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता:

इस प्रजाति के उच्च औषधीय गुणवत्ता के कारण इसकी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक मांग है। जिस कारण हर्बल दवा निर्माता उद्योगों की मांग की आपूति को पूरा करने के लिए इसके वितरण क्षेत्रों में इस प्रजाति के अवैध व्यापार के चलते अवैज्ञानिक तरीके से अंधाधुंध दोहन के कारण इसके पौधे इसके प्राकृतिक आवासों में विलुप्त होने के कगार पर हैं। इसकी अत्यधिक मांग के कारण लोग प्राकृतिक आवास स्थलों में उगे हुए सतुवा के सभी पौधों को इसके प्रकंदों के लिए बीज परिपक्वता से पूर्व उखाड़ लेते हैं जो इसके प्राकृतिक आवासों में इसके पुनर्जनन की विफलता लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार

प्रकंद

है। इसके अतिरिक्त इसकी इतिवृत विशेषताएँ जैसे कि कम व्यवहार्य बीज उत्पादन, लंबी संतति चक्र, बीजों की लंबी निष्क्रियता और उच्च आवास विशिष्टता कारकों के कारण भी प्रकृति में इसका पुनर्जनन कम है। साथ ही साथ अन्य मानवीय हस्तक्षेप मुख्यतः अत्यधिक एवं अनियंत्रित चराई, आग, सड़कों का निर्माण, पर्यटन इत्यादि के कारण भी इसके प्राकृतिक आवास स्थलों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है जिस कारण इसकी प्राकृतिक आबादी लगातार घट रही है। इसके अलावा इसकी धीमी गति से बढ़ने की प्रवृत्ति कारण प्रकृति में इसकी बहाली सीमित है। अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और नागालैंड से म्यांमार के जरिए चीन में इसका अवैध व्यापार भी होता है क्योंकि चीन और नेपाल के पारंपरिक दवा बाजार में इस प्रजाति की मांग बहुत अधिक है। इस प्रजाति के व्यापार का विनियमन खराब है तथा व्यापार की मात्रा की पूर्ण जानकारी इसके व्यापक स्तर पर अवैध बाजारों के कारण उपलब्ध नही है। वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ ने इसकी लगातार कम होती प्राकृतिक आबादी को देखते हुये इसे अतिसंवेदनशील प्रजाति की श्रेणी में रखा है।

स्वस्थाने संरक्षण एवं खेती की आवश्यकता:

इस प्रजाति की राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में निरंतर बढ़ती मांग को देखते हुए इसका स्वस्थाने संरक्षण एवं खेती की अत्यंत आवश्यकता है। इसकी लगातार बढ़ते मांग की आपूर्ति जंगलों से इसके संग्रह की बजाय व्यवसायिक खेती के माध्यम से किया जा सकता है। जिससे इसके वितरण क्षेत्रों में न केवल स्थानीय लोगों की आजीविका बढ़ेगी अपितु प्राकृतिक आवासों में इन्हें पुनः

स्थापित भी किया जा सकेगा। इसे पूर्ण या आंशिक छाया में ह्यूमस युक्त नम मिट्टी में बीज एवं प्रकंदों से उगाया जा सकता है परंतु बीजों का लंबे समय तक सुप्तावस्था और धीमा अंकुरण, पुनर्जनन के लिए एक विकट समस्या है। इसलिए जंगल से एकत्रित प्रकंद ही प्रजनन एवं औषधीय प्रयोजनों के लिए एकमात्र स्रोत हैं। इसके अलावा, इस पौधे को केवल 5-7 वर्षों तक बढ़ने के बाद ही काटा जा सकता है, जो इसके संसाधन की कमी को और बढ़ाता है। इस प्रजाति की खेती चीन एवं नेपाल में प्रारम्भिक स्तर पर है परंतु भारतीय हिमालयी क्षेत्रों में किसानों द्वारा इसकी खेती अभी शुरू नहीं की गई है। व्यावसायिक खेती शुरू किये जाने से न केवल इसके प्राकृतिक आबादी पर बढ़ते अनियंत्रित संग्रह के प्रभाव को कम किया जा सकेगा अपितु स्थानीय लोगों की आजीविका में भी यह महत्वपूर्ण योगदान देगा।

शोध की आवश्यकता:

इस प्रजाति पर अब तक बहुत कम शोध कार्य हुआ है इसलिए बढ़ते मानवजनित खतरों एवं बदलती जलवायु के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए इसके प्राकृतिक आवासों में आबादी, वितरण, सहयोगी प्रजातियों, बीजों के पुनजर्नन, खेती की तकनीक, बीजों एवं कंदों की गुणवत्ता, संवहनीय एकत्रीकरण तकनीक एवं वर्तमान बाज़ार में मांग एवं उपलब्धता के अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है ताकि इसके प्रबंधन के लिए उपयुक्त नीति तैयार की जा सके। अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ के संकटग्रस्त प्रजातियों की श्रेणी में होने के कारण भी इसके संरक्षण हेतु तुरंत प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। वर्तमान में भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार के वित्तीय सहयोग एवं शिक्षा 'ओ' अनुसंधान विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर एवं डीबीटी-जैव संसाधन और सतत विकास संस्थान (आईबीएसडी) तकयिलपत, इंफाल, मणिपुर के सहयोग साथ "कुछ महत्वपूर्ण हिमालयी औषधीय पौधे के उच्च गुणवत्ता के जर्मप्लाज्म का बड़े पैमाने पर गुणन हेतु पारिस्थितिक मूल्यांकन, आला मॉडलिंग, फाइटोकेमिकल जांच और प्रॉपेगेशन प्रोटोकॉल का मानकीकरण" नामक परियोजना पर कार्य कर रही है। इस परियोजना में सतुवा के उच्च गुणवत्ता के जर्मप्लाज्म तैयार करने के साथ इनके पारिस्थितिक मूल्यांकन, आला मॉडलिंग, फाइटोकेमिकल जांच और प्रॉपेगेशन प्रोटोकॉल का मानकीकरण किया जाएगा ताकि इस प्रजाति का इसके प्राकृतिक आवासों में बहाली के साथ बेहतर संरक्षण एवं प्रबंधन हो पाये।

संरक्षण हेतु स्थानीय लोगों की भागीदारी की आवश्यकता:

इसके प्रभावी संरक्षण के लिए इसकी खेती के तकनीक के विकास के साथ-साथ, आवास स्थलों का संरक्षण एवं इसके प्रकंदों का संवहनीय संग्रह अत्यधिक आवश्यक है, जोकि स्थानीय लोगों के सक्रिय भागीदारी के बिना संभव नहीं है। इसलिए इसकी प्राकृतिक आबादी को लगातार घटने से बचाने के लिए इस प्रजाति के संरक्षण हेतु तत्काल उपयुक्त रणनीतियों के विकास एवं इसके वितरण क्षेत्रों में जागरूकता कार्यक्रमों के आयोजन की आवश्यकता है जिससे लोगों को इस प्रजाति की उपयोगिता तथा बीज परिपक्वता के बाद इसके प्रकंदों को एकत्रित करने की जानकारी दी जा सके। इस प्रकार सरकार एवं स्थानीय समुदायों के संयुक्त प्रयासों से इस प्रजाति को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

मुराया कोएनिजी : प्रमुख सुगंधित तथा औषधीय गुणों वाला पौधा

डॉ. ऋचा ठाकुर, डॉ. पी. एस. नेगी एवं सुश्री प्रीतिका चौहान

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय:

मुराया कोएनिजी, एक शाकीय पौधा है, जो रूटेसी परिवार के अंतर्गत आता है। यह मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में 500-1600 मीटर तक की ऊंचाई में पाया जाता है। इसको सामान्य भाषा में "कढ़ी पत्ता" या "मीठी नीम" भी कहा जाता है। यह अपने सुगंधित और पोषण मूल्य के लिए जाना जाता है। यह साल भर उगने वाला पौधा है। यह पौधा प्राकृतिक रूप से वन क्षेत्र में उगता है। यह भारत से व्यापक रूप से निर्यात होने वाली एक महत्वपूर्ण वस्तु है। इसकी पत्तियां स्वाद में थोड़ी कड़वी, गंध में तीखी और हल्की अम्लीय होती हैं। पत्तियों में पाये जाने वाले सुगंधित बायोएक्टिव घटक सूखने के बाद भी अपने स्वाद और अन्य गुणों को बनाए रखते हैं।

विवरण:

यह एक छोटा शाकीय पौधा जो प्रायः बहुत तेजी से बढ़ता है। इसकी उंचाई 2-4 मीटर होती है। तना गहरे हरे से लेकर भूरे रंग का होता है, जिसका व्यास 1.5-2 से.मी. तक होता है। इसकी पत्तियां गहरे हरे रंग की और नुकीली होती हैं, हर टहनी में 11-21 पत्तीदार कमानियां होती हैं जो 2-4 से.मी. लम्बी व 1-2 से.मी. चौड़ी होती हैं। ये पत्तियां बहुत ही ख़ुशबूदार होतीं हैं। इसके फूल छोटे, सफ़ेद रंग के और ख़ुशबूदार होते हैं। इसके फल छोटे, लगभग 1.4 से 1.6 से.मी. लंबे, 1 से 1.2 से.मी. चौड़े और 880 मिलीग्राम वजन के होते है। पूर्ण रूप से पके हुये फल चमकीले काले रंग के होते हैं जो खाए तो जा सकते हैं, लेकिन इनके बीज ज़हरीले होते हैं। परिपक्व पत्तियों में 63.2% नमी, 1.15% कुल नाइट्रोजन, 6.15% वसा, 18.92% कुल शर्करा, 14.6% स्टार्च, 6.8% कच्चे फाइबर और 13.06% राख होती है।

पारंपरिक उपयोग :

यह पौधा मुख्य रूप से अपनी सुगंधित प्रकृति के लिए जाना जाता है। इसका पत्ता कढ़ी या करी नामक व्यंजन बनाने में भी उपयुक्त होता है। इसकी पत्तियों को पीस कर चटनी भी तैयार की जाती है। भारतीय व्यंजनों में खासकर दक्षिण भारत के व्यंजनों में इसकी पत्तियों का उपयोग बहुत महत्त्व रखता है।

औषधीय गुण :

इसकी पत्तियों का उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा में किया जाता है। भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा में इसे

पौधा

तना

"कृष्णनिम्बा" के रूप में जाना जाता है। इनके औषधीय गुणों में ऐंटी-डायबिटीक, ऐंटीऑक्सीडेंट, ऐंटीमाइक्रोबियल, ऐंटी-इन्फ्लेमेटरी, हिपैटोप्रोटेक्टिव, ऐंटी-हाइपर कोलेस्ट्रौलेमिक इत्यादि शामिल हैं। कई शोधों में इंसुलिन पर निर्भर मधुमेह रोगियों को पत्तियों का पाउडर खिलाने से फास्टिंग ब्लड शुगर और खाने के बाद के ब्लड शुगर में उल्लेखनीय कमी देखी गई है। इसके अलावा कढ़ी पत्ता बालों को लम्बे, स्वस्थ और असमय सफेदी को रोकने के लिए भी बहुत लाभकारी माना जाता है। इसके पके बीजों से तेल निकाला जाता है जिसका उपयोग साबुन में इत्र और कॉस्मेटिक में एक घटक के रूप में किया जाता है। पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में पत्तियों, छाल और सत्त का उपयोग टानिक, उत्तेजक, वातहर और भूख बढ़ाने वाली दवा के रूप में किया जाता है। यह दांत की सफाई के लिए दातुन के रूप में भी लोकप्रिय है। पत्तियों को रोज चबाने से वजन कम होता है। दृष्टि को बढ़ाने में पत्तियां मदद करती है। डंठल और टहनियों के अर्क का उपयोग त्वचा कंडीशनर के रूप में किया जाता है। इसके फूलों का इस्तेमाल चींटियों को भगाने के लिए किया जाता है। फलों के रस को नींबू के रस के साथ मिलाकर कीट के काटने और डंक मारने पर लगाया जाता है। छाल से बना पेस्ट जहरीले कीड़े और अन्य जानवरों के काटने पर लगाया जाता है।

आशा का दीपक

वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल दूर नहीं है,
थक कर बैठ गये क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।

चिंगारी बन गई लहू की बूंद गिरी जो पग से,
चमक रहे पीछे मुड़ देखो चरण-चिन्ह जगमग से।
बाकी होश अभी तक, जब तक जलता तूर नहीं है,
थक कर बैठ गये क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।

अपनी हड्डी की मशाल से हृदय चीरते तम का,
सारी रात चले तुम दुख झेलते कुलिश का।
एक खेय है शेष, किसी विध पार उसे कर जाओ,
वह देखो, उस पार चमकता है मंदिर प्रियतम का।
आकर इतना पास फिरे, वह सच्चा शूर नहीं है,
थककर बैठ गये क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य-प्रकाश तुम्हारा,
लिखा जा चुका अनल-अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।
जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलाएगी ही,
अम्बर पर घन बन छाएगा ही उच्छवास तुम्हारा।
और अधिक ले जांच, देवता इतना क्रूर नहीं है,
थककर बैठ गये क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

लाख की खेती और विभिन्न औद्योगिक उत्पादों में इसका उपयोग

श्री अरबिन्द डेका

भा.वा.अ.शि.प. - वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

लाख की खेती एक फायदेमंद व्यवसाय है। इससे बहुत से लोग लाभान्वित हो सकते हैं। इसके लिए केवल कुछ वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है। हम यहां संक्षेप से विभिन्न औद्योगिक उत्पादों में इसके उपयोग के बारे में चर्चा करेंगे।

लाख *केरिया लक्का* (Kerria lacca) नामक विशेष मादा कीट द्वारा स्रावित एक चिपचिपा पदार्थ है। इसे व्यावसायिक तौर पर व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है। लाख-कीट एक छोटा रस-चूसने वाला कीट है। यह "कैरिडे" परिवार और "हेमिपटेरा" वर्ग से है। मादा कैरिया लाख का रस चूसती है, बढ़ती है और अपने शरीर से गोंद को स्रावित करती है। लाख तैयार करने के लिए इस गोंद को सुखाया जाता है। कीड़ों का जीवन चक्र प्रति वर्ष दो पीढ़ियों में पूरा होता है।

भारत लाख के उत्पादन में दुनिया के प्रमुख देशों में से एक है। हमारा देश प्रति वर्ष औसतन 18,746 मैट्रिक टन लाख का उत्पादन करता है और यह दुनिया के लाख का 50% - 60% हिस्सा है। परंपरागत रूप से लाख उत्पादन प्राकृतिक रूप से किया जाता है। कुसुम (*Schleichera oleosa*), खरबूजा (*Ziziphus mauritiana*), बबूल (*Vachellia arabica*), कत्था (खैर) (*Senegalia catechu*), अरहर दाल (*Cajanus cajan*), मखियाती और पलाश (*Butea monosperma*) सरलता से उपलब्ध पौधे हैं। इस प्रजाति के पेड़ों को उनकी धीमी वृद्धि और श्रम-गहन कारकों के कारण लाख का उत्पादन करने के लिए 5-10 साल तक की आवश्यकता होती है।

लेकिन भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों, में खास करके असम में *फ़्लेमिंजिया सेमियालाटा* (मखियाती प्रजाति) लाख उत्पादन के लिए सबसे अच्छी प्रजाति मानी जाती है। फलीदार (Leguminous) पेड़ होने के कारण, यह मिट्टी में नाइट्रोजन को बनाए रखता है और मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता को बढ़ाता है। इस पेड़ के तेजी से विकास के लिए बीज और तने की कटिंग को जल्द से जल्द कीट से संक्रमित किया जा सकता है। लाख की खेती रोपण के दूसरे वर्ष से शुरू की जा सकती है। इसके अलावा *फ़्लेमिंजिया सेमियालाटा* की कम ऊंचाई की कारण रखरखाव और कटाई करने में सुविधाजनक होता है। एक बार सेमियालाटा की खेती हो जाने के बाद लाख का उत्पादन 7-8 वर्षों तक लगातार किया जा सकता है। हम साल में दो बार फसल ले सकते हैं।

लाख की खेती करने के लिए, लाख कीट के अंडों के साथ ब्रूड लाख की छोटी शाखाओं को फ़्लेमिंजिया सेमियालाटा के सूखे और रसीले तनों से बांधा जाता है। हजारों ला-कीट पोषक वृक्षों की शाखाओं पर जम जाते हैं और अपने शरीर को ढकने के लिए लाली जैसा कुछ तरल स्रावित करते हैं। यह तरल धूप और हवा के संपर्क में आने पर कठोर हो जाता है। यह इस कठोर खोल के भीतर है कि लार्वा परिपक्व होते हैं और खोल के भीतर अपने अंडे देते हैं।

लाख के विभिन्न रूप

छड़ी लाख : चाकू या हाथ से परपोषी पौधों की टहनी से अलग की गई लाख की पपड़ी को कच्ची लाख या छड़ी लाख के रूप में जाना जाता है।

बीज लाख : छड़ी लाख पीसने और धोने के बाद बीज लाख कहलाती है।

बटन लाख : पिघलने के बाद लाख को ज़िंक शीट पर डाल दिया जाता है और गोल तसली में फैलने दिया जाता है। इसे बटन लाख के रूप में जाना जाता है।

चपड़ा लाख : छड़ी लाख को धोकर पिघलाकर पीले रंग के गुच्छे के रूप में बनाया किया जाता है। इसको चपड़ा कहते हैं।

रक्तमणि लाख : अवर बीज लाख या किरी से सॉल्वेंट एक्सट्रैक्शन प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। यह गहरे रंग का होता है।

प्रक्षालित लाख : यह रासायनिक उपचार द्वारा प्राप्त

लाख के विभिन्न रूप

परिष्कृत लाख रूप है। यह सोडियम कार्बोनेट घोल (Na_2CO_3) में बीज लाख या चपड़ा को घोलकर, सोडियम हाइपोक्लोराइट (NaOCl) के साथ घोल को विरंजित करके और सल्फ्यूरिक एसिड (H_2SO_4) के साथ राल को अवक्षेपित करके तैयार किया जाता है।

विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में लाख का प्रयोग :

लाख का उपयोग प्राचीन काल से विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता रहा है। चूंकि लाख प्राकृतिक रूप से उपलब्ध है, बायोडिग्रेडेबल और अविषाक्त है। इसका उपयोग निम्नलिखित उद्योगों में किया जाता है।

- आमतौर पर सीलिंग मोम के रूप में उपयोग किया जाता है।
- कपड़ा उद्योगों में डाई सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है।
- लकड़ी के फर्नीचर की वार्निशिंग में इसका उपयोग किया जाता है।
- लिपस्टिक, काजल, नेल पॉलिश, शैंपू, हेयर स्प्रे, परफ्यूम आदि जैसे विभिन्न सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माण में उपयोग किया जाता है।
- फोटोग्राफिक सामग्री और लिथोग्राफी स्याही के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है
- जौहरी और सुनार चूड़ी एवं कंगन आदि आभूषण बनाने में उपयोग करते हैं।
- गुड़िया, बटन, चीनी मिट्टी के बरतन, हार और कृत्रिम चमड़े के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है।
- फलों के रस, शराब, जैम, सॉस, मॉर्टन आदि में रंग एजेंट के रूप में उपयोग किया जाता है।
- बिजली के तारों के इन्सुलेशन में लाख का उपयोग किया जाता है।
- ऑटोमोबाइल उद्योग में सीमेंट में शेलैक-आधारित गास्केट का उपयोग किया जाता है।
- जूता पॉलिश के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है।
- सेलैक मुख्य रूप से कन्फेक्शनरी उद्योगों में उपयोग किया जाता है, खासकर चॉकलेट उत्पादों के निर्माण में। फलों की परत चढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है।
- लाख का उपयोग दवाओं पर परत चढ़ाने के लिए किया जाता है।

आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी प्रणालियों में, लाख का उपयोग लीवर, पेट और छोटी आंत जैसे विभिन्न रोगों के इलाज के लिए टॉनिक के रूप में किया जाता है।

विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में लाख का प्रयोग एवं लाख के विभिन्न रूप

हर्बल औषधियों का गुणवत्ता नियंत्रण

डॉ. के. जी. भूटिया, डॉ. पी. एल. भूटिया एवं डॉ. सोनकेश्वर शर्मा

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, हर्बल औषधियों को उन पौधों के रूप में परिभाषित किया गया है, जो विशेष रूप से, किसी भी माध्यम में, मनुष्यों पर प्रयोग होने पर औषधीय प्रभाव पैदा करने में सक्षम होते हैं। हर्बल औषधियाँ, जिन्हें वनस्पति औषधियाँ या फाइटोमेडिसिन के रूप में भी जाना जाता है, का उपयोग सदियों से दुनिया भर की विभिन्न संस्कृतियों में स्वास्थ्य देखभाल के प्राथमिक रूप में किया जा रहा है। ये उपचार आमतौर पर जड़ों, पत्तियों, फूलों, फलों, बीजों या छाल से प्राप्त होते हैं और विशेष रूप से विशिष्ट बीमारियों के इलाज या समग्र कल्याण को बढ़ाने के लिए तैयार किए जाते हैं। विकासशील देशों में, लगभग 80 प्रतिशत आबादी अपनी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हर्बल चिकित्सा पर निर्भर है। अकेले भारत में औषधीय पौधों की 8,000 से अधिक प्रजातियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें से लगभग 50 प्रतिशत उच्च फूल वाले पौधों की प्रजातियों से संबंधित हैं, जो मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में वितरित हैं। वर्तमान में, भारतीय हर्बल उद्योग में उपयोग किए जाने वाले 95 प्रतिशत औषधीय पौधे जंगल से एकत्र किए जाते हैं। गुणवत्ता नियंत्रण फार्मास्युटिकल उद्योग का एक अनिवार्य पहलू है, जो यह सुनिश्चित करता है कि हर्बल दवाओं को सुसंगत और पूर्वानुमानित प्रदर्शन के साथ सुरक्षित और चिकित्सीय रूप से सक्रिय फॉर्मूलेशन के रूप में कारोबार में उपयोग किया जाए। सार्वजनिक विश्वास हासिल करने और हर्बल उत्पादों को आज की स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में एकीकृत करने के लिए, हर्बल उत्पादों की सुरक्षा, गुणवत्ता और प्रभावकारिता सुनिश्चित करने के लिए शोधकर्ताओं, निर्माताओं और नियामक एजेंसियों द्वारा कठोर वैज्ञानिक पद्धतियों को लागू किया जाना चाहिए। हर्बल दवाओं की बढ़ती मांग के कारण वास्तविक और उच्च गुणवत्ता वाला कच्चा माल प्राप्त करना एक चुनौती बन गया है।

गुणवत्ता नियंत्रण में तीन महत्वपूर्ण फार्माकोपियल पहलू शामिल हैं :

1. **पहचान या प्रामाणिकता:** पहचान या प्रामाणिकता से तात्पर्य सामग्री की वास्तविक प्रकृति और सही पहचान की पुष्टि करना है। हर्बल दवाओं का गुणवत्ता नियंत्रण पौधे की पहचान से शुरू होता है।

2. **शुद्धता:** शुद्धता में यह सुनिश्चित करना शामिल है कि सामग्री में वांछित जड़ी-बूटी के अलावा कोई अन्य दूषित पदार्थ न हो। शुद्धता दवाओं के सुरक्षित उपयोग से नज़दीकी से जुड़ी हुई है और इसमें राख, दूषित पदार्थों (जैसे मिट्टी, पत्थर, धूल, कीड़ों के अंग, या जानवरों के मलमूत्र), एक ही पौधे से वनस्पति पदार्थ की उपस्थिति और अन्य जड़ी-बूटियों या उनके भागों और भारी धातुओं की उपस्थिति शामिल है।

3. **परख या सामग्री:** सामग्री के सक्रिय घटकों को परिभाषित सीमा के भीतर आना चाहिए। सामग्री या परख गुणवत्ता नियंत्रण का सबसे चुनौतीपूर्ण पहलू है, खासकर इसलिए क्योंकि अधिकांश हर्बल दवाओं में सक्रिय घटक अज्ञात होते हैं।

गुणवत्ता नियंत्रण का महत्व:

दुनिया भर में हर्बल उत्पादों के उपयोग में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। हालाँकि, इस लोकप्रियता ने प्रतिकूल स्वास्थ्य प्रभावों, परिवर्तनशील गुणवत्ता, प्रभावकारिता और हर्बल उत्पादों की सामग्री के बारे में चिंताएँ बढ़ा दी हैं। संभावित दुष्प्रभावों में एलर्जी प्रतिक्रियाएं, पारंपरिक दवाओं के साथ परस्पर क्रिया और आंतरिक विषाक्तता शामिल हैं। तैयारी और विनिर्माण से संबंधित मुद्दे, जैसे गलत पहचान, मानकीकरण की कमी, संदूषण, प्रतिस्थापन, मिलावट और अनुचित खुराक, समस्या को और बढ़ा देते हैं। हर्बल दवाओं, मानकीकृत अर्क या शुद्ध सक्रिय यौगिकों की पहचान, शुद्धता, शक्ति, सुरक्षा और

प्रभावकारिता सुनिश्चित करने के लिए गुणवत्ता नियंत्रण महत्वपूर्ण है। पारंपरिक औषधियाँ वैश्विक आबादी के लगभग 85 प्रतिशत लोगों द्वारा उपयोग की जाती हैं। आधुनिक चिकित्सा में उनकी स्वीकार्यता को उचित ठहराने के लिए गुणवत्ता नियंत्रण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। गुणवत्ता नियंत्रण हर्बल तैयारियों की सुरक्षा, गुणवत्ता और स्थिरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशानिर्देशों के अनुसार हर्बल दवाओं के गुणवत्ता नियंत्रण पैरामीटर :

बाह्य कार्बनिक पदार्थ: एकत्रित हर्बल औषधियाँ विदेशी कार्बनिक पदार्थ जैसे मिट्टी, पत्थर, धूल, कीड़ों के अंग और जानवरों के मल आदि से मुक्त होनी चाहिए।

मैक्रोस्कोपिक और माइक्रोस्कोपी परीक्षण: ये हर्बल दवाओं की पहचान, शुद्धता और गुणवत्ता स्थापित करने के लिए किए जाते हैं। हर्बल दवाओं की मैक्रोस्कोपिक जांच आकार, रंग, सतह की विशेषताओं, बनावट, फ्रैक्चर की विशेषताओं और कटी हुई सतह की उपस्थिति आदि पर आधारित होती है, जबकि सूक्ष्म जांच में वेनलेट (नस) संख्या, वेनलेट समाप्ति संख्या, पलिसेड (कटघरा) अनुपात, रंध्र संख्या, रंध्र सूचकांक, ट्राइकोम्स, आदि का निर्धारण शामिल होता है।

राख का मूल्य: राख का मूल्य हर्बल दवाओं की पहचान, शुद्धता और गुणवत्ता स्थापित करने के लिए निर्धारित किया जाता है। औषधीय पौधों की सामग्री के प्रज्वलन के बाद बची हुई राख का निर्धारण तीन अलग-अलग तरीकों से किया जाता है जो कुल राख, एसिड-अघुलनशील राख और पानी में घुलनशील राख से मापते हैं। उदाहरण के लिए सर्पगन्धा (*राउवोल्फिया सर्पेंटिना*) में कुल राख सामग्री 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए और एसिड-अघुलनशील राख 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

सूखने पर हानि/आर्द्रता-मात्रा: औषधीय पौधों की सामग्री में अत्यधिक पानी की उपस्थिति माइक्रोबियल विकास, कवक या कीट के हमले को बढ़ावा देती है, और जल-अपघटन (हाइड्रोलिसिस) के माध्यम से गिरावट की ओर ले जाती है। संरक्षण के लिए, सक्रिय घटकों के जल-अपघटक (हाइड्रोलाइटिक) क्षरण को रोकने और कच्ची दवाओं के आकार में आसानी से कटौती की सुविधा के लिए कच्ची दवाओं को सुखाना महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, सनाय (*कैसिया अन्गुस्टिफोलिया*) में नमी की मात्रा सीमा 12 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

निष्कर्षण मूल्य: निष्कर्षण मूल्य एक विशिष्ट विलायक के साथ निकाले जाने पर हर्बल सामग्री में मौजूद सक्रिय घटकों की मात्रा निर्धारित करता है। यह हर्बल कच्चे माल की पहचान और प्रमाणीकरण में मदद करता है।

प्रतिदीप्ति विश्लेषण: प्रतिदीप्ति विश्लेषण वास्तविक नमूनों की पहचान करने और मिलावट का पता लगाने के लिए एक मूल्यवान फार्माकोग्नॉस्टिक प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है। दवा के नमूने के लिए प्रतिदीप्ति विश्लेषण 254 एनएम, 365 एनएम की तरंगदैर्ध्य के साथ पराबैंगनी रोशनी के तहत और दिन के उजाले में किया जाता है।

क्रोमैटोग्राफी (वर्णलेखिका): क्रोमैटोग्राफी एक महत्वपूर्ण बायोफिजिकल विधि है जिसका उपयोग गुणात्मक और मात्रात्मक विश्लेषण के लिए किया जाता है, जो मिश्रण घटकों के पृथक्करण, पहचान और शुद्धिकरण को सक्षम बनाता है। यह तकनीक अत्यधिक फायदेमंद साबित होती है क्योंकि यह मिश्रण घटकों को उनकी प्रकृति, संरचना, आकार आदि जैसे विभिन्न गुणों के आधार पर अलग करने की सुविधा प्रदान करती है। जैव-सक्रिय (बायोएक्टिव) यौगिकों के गुणात्मक और मात्रात्मक विश्लेषण के लिए विभिन्न प्रकार की क्रोमैटोग्राफी का उपयोग किया जाता है 1) पतली परत क्रोमैटोग्राफी (टीएलसी), 2) उच्च-प्रदर्शन पतली परत क्रोमैटोग्राफी (एचपीटीएलसी), 3) उच्च-प्रदर्शन तरल क्रोमैटोग्राफी (एचपीएलसी) 4) गैस क्रोमैटोग्राफी-मास स्पेक्ट्रोमेट्री (जीसी-एमएस) 5) कॉलम क्रोमैटोग्राफी, 6) तरल क्रोमैटोग्राफी, आदि।

कड़वाहट का मान: हर्बल दवाओं की पहचान और शुद्धता स्थापित करने के लिए कड़वाहट मूल्यों का निर्धारण आवश्यक है। इन दवाओं के कड़वे गुणों का आकलन करने के लिए, जड़ी-बूटियों के अर्क की सीमा कड़वी सांद्रता की तुलना कुनैन हाइड्रोक्लोराइड के पतला घोल से की जाती है। उदाहरण के लिए, एंड्रोग्रैफिस पैनिकुलाटा का कड़वाहट मूल्य 2860 (1.74-मानक विचलन) यूनिट प्रति ग्राम है।

सूजन सूचकांक: अधिकांश हर्बल दवाएं अपने सूजन गुणों के कारण विशिष्ट चिकित्सीय गुणों या फार्मास्युटिकल उपयोगिता वाली होती हैं। विशेष रूप से मसूड़ों और उनमें काफी मात्रा में म्यूसिलेज, पेक्टिन या हेमिकेलुलोज होते हैं। सूजन सूचकांक निर्धारित करने के लिए, 1 ग्राम पौधे सामग्री की सूजन द्वारा अवशोषित मिश्रण के मिलीलीटर में मात्रा को मापा जाता है। उदाहरण के लिए, बबूल पेनाटा का सूजन सूचकांक (प्रतिशत) 45 है।

झाग सूचकांक: कई हर्बल दवाओं में सैपोनिन होता है जो पानी में लगातार झाग पैदा कर सकता है। फोमिंग इंडेक्स का उपयोग हर्बल दवाओं और उनके अर्क की फोमिंग क्षमता को मापने के लिए किया जाता है। हर्बल औषधियों की पहचान, शुद्धता और गुणवत्ता स्थापित करने के लिए फोमिंग इंडेक्स का निर्धारण किया जाता है।

कीटनाशक अवशेष: कीटनाशक अवशेष आंखों में जलन, पसीना, सांस फूलना, हाइपोटेंशन, कार्डियक अतालता, श्वसन पक्षाघात और ऐंठन आदि जैसे विषाक्त प्रभाव पैदा करता है। उदाहरण के लिए, एल्ड्रिन और डिएल्ड्रिन की अधिकतम अवशेष सीमा 0-05 मिलीग्राम/किग्रा से अधिक नहीं है। विभिन्न क्रोमैटोग्राफी तकनीकों में से, गैस क्रोमैटोग्राफी-मास स्पेक्ट्रोमेट्री (जीसी-एमएस) हर्बल दवाओं में कीटनाशक अवशेषों के निर्धारण के लिए व्यापक रूप से अपनाई गई तकनीक है।

भारी धातु सामग्री: हर्बल दवाओं में सीसा, कैडमियम, आर्सेनिक और पारा जैसी भारी धातुओं को गुर्दे, फेफड़े, हृदय, यकृत और मस्तिष्क की क्षति जैसे कई स्वास्थ्य खतरों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और विभिन्न प्रकार के कैंसर, त्वचा रोग और अल्सर आदि भी हो सकते हैं। इसलिए, हर्बल कच्चे माल में भारी धातु सामग्री के स्तर की जांच करना महत्वपूर्ण है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, सीसा और कैडमियम जैसी भारी धातुओं की अधिकतम स्वीकार्य सीमा क्रमशः 10 और 0-3 पीपीएम है। भारत के आयुर्वेदिक फार्माकोपिया के अनुसार, हर्बल दवाओं में भारी धातुओं की अधिकतम अनुमेय सीमा इस प्रकार है: पारा (1पीपीएम), आर्सेनिक (3 पीपीएम), सीसा (10 पीपीएम), और कैडमियम (0-3 पीपीएम)। भारी धातु सामग्री के विश्लेषण के लिए आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली विधियां इंडक्टिव कपल्ड प्लाज्मा-मास स्पेक्ट्रोस्कोपी (आईसीपी-एमएस), परमाणु अवशोषण स्पेक्ट्रोमेट्री (एएएस) और न्यूट्रॉन सक्रियण विश्लेषण (एनएए) हैं।

माइक्रोबियल संदूषण: हर्बल दवाओं में माइक्रोबियल संदूषण विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होता है। जड़ी-बूटियाँ और हर्बल सामग्रियाँ स्वाभाविक रूप से बैक्टीरिया और फफूंदी को आश्रय देती हैं, जो अक्सर मिट्टी या खाद से उत्पन्न होती हैं। जबकि औषधीय पौधों का अपना माइक्रोफ्लोरा होता है जिसमें विविध बैक्टीरिया और कवक होते हैं, एरोबिक बीजाणु बनाने वाले बैक्टीरिया आमतौर पर प्रमुख होते हैं। कटाई, उत्पादन, परिवहन और भंडारण से संबंधित अपर्याप्त प्रथाओं से अतिरिक्त संदूषण और सूक्ष्मजीव वृद्धि हो सकती है। परिवहन और भंडारण के दौरान नमी के स्तर को नियंत्रित करने में विफलता, साथ ही तरल रूपों और तैयार हर्बल उत्पादों के लिए अपर्याप्त तापमान नियंत्रण, सूक्ष्मजीवों के प्रसार में योगदान कर सकते हैं। इसके अलावा, कटाई के बाद प्रसंस्करण और विनिर्माण के दौरान रोगजनक बैक्टीरिया से संक्रमित कर्मियों द्वारा हर्बल दवाओं के उत्पादन प्रक्रिया में माइक्रोबियल संदूषण हो सकता है। इस समस्या से प्रभावी ढंग से निपटने के लिएमा इक्रोबियल संदूषण के उचित नियंत्रण और रोकथाम को सुनिश्चित करने के लिए अच्छे कृषि अभ्यास (जीएपी), अच्छे संग्रह अभ्यास (जीसीपी), और अच्छे विनिर्माण अभ्यास (जीएमपी) जैसे सर्वोत्तम अभ्यास दिशानिर्देशों को लागू करना महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष: हर्बल दवाओं की सुरक्षा, प्रभावकारिता और लगातार प्रदर्शन सुनिश्चित करने के लिए उनका गुणवत्ता नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। हर्बल उत्पादों की बढ़ती लोकप्रियता और मांग ने परिवर्तनीय गुणवत्ता, संभावित प्रतिकूल प्रभावों और अनुचित सामग्री के बारे में चिंताएं बढ़ा दी हैं। इन मुद्दों के समाधान के लिए कठोर वैज्ञानिक पद्धतियों और गुणवत्ता नियंत्रण मापदंडों को लागू किया जाना चाहिए।

नैनो-प्रौद्योगिकी: काष्ठ विज्ञान में महत्व और अनुप्रयोग

सुश्री ऋचा बंसल, डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. कृष्ण कुमार पांडेय

भा.वा.अ.शि.प. - काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

नैनो-प्रौद्योगिकी पर अनुसंधान से यह प्रमाणित हुआ है कि काष्ठ विज्ञान में नैनो-प्रौद्योगिकी के उपयोग से बहुत लाभ होता है। काष्ठ विज्ञान के क्षेत्र में नैनो-प्रौद्योगिकी एक महत्वपूर्ण और व्यापक विषय है। इसमें काष्ठ की संरचना, गुणवत्ता, रसायन और बायोलॉजिकल विशेषताओं का विश्लेषण किया जाता है, साथ ही उसके अनुप्रयोगों की खोज भी की जाती है। इस लेख का उद्देश्य काष्ठ विज्ञान में नैनो-प्रौद्योगिकी के विविध अनुप्रयोगों की व्यापक समीक्षा प्रदान करना है, जिसमें महत्वपूर्ण प्रगति और आशाजनक संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है। नैनो-प्रौद्योगिकी विज्ञान में एक नवीन अनुसंधान क्षेत्र के रूप में उभरी है, जिसका उद्देश्य नैनोस्केल स्तर पर काष्ठ के गुणों को बढ़ाना है। नैनो-प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग में काष्ठ की गुणवत्ता, स्थायित्व, प्राकृतिक सौंदर्यशास्त्र और संरचनात्मक गुणों को बढ़ाने की क्षमता है। बाहर उपयोग की जाने वाली काष्ठ की सुरक्षा नैनो आधारित काष्ठ पर आवरण के साथ प्रदान की जा सकती है। हालाँकि, बड़े औद्योगिक पैमाने पर नैनोमैटेरियल का उपयोग करने के लिए पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक और सुरक्षा उपायों को अपनाने की आवश्यकता होती है। समस्तरूप से, काष्ठ विज्ञान क्षेत्र में नैनोमैटेरियल के उपयोग से पर्याप्त सुधार और नवाचार हुए हैं और यह निकट भविष्य में पारंपरिक पद्धतियों को प्रतिस्थापित करने की क्षमता रखता है। काष्ठ विज्ञान और अत्याधुनिक तकनीक का मिश्रण उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के उत्पादन को सक्षम बनाता है जो प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं और पर्यावरण की रक्षा करने में मदद करता है।

1. परिचय: वैज्ञानिक दृष्टिकोण से काष्ठ एक मजबूत और हल्के वजन वाली सामग्री है। यह बहुत सारे रंग, बनावट, विश्लेषणात्मक गुणों और यांत्रिक, रासायनिक और भौतिक गुणों वाली होती है। यही कारण है कि काष्ठ बहुत से उद्देश्यों के लिए अच्छी तरह से काम करती है, परंतु हर काष्ठ के विशिष्ट गुणों और विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इसका उपयोग करना चाहिए। काष्ठ की कम लागत, आसानी से उपलब्धता और टिकाऊपन के कारण इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। काष्ठ मुख्यतः सेलुलोजिक सामग्री है, जो पेड़ों और पौधों का मुख्य बहुलक है। काष्ठ को इससे प्राकृतिक और नवीन उत्पाद की अद्वितीय क्षमता मिलती है। अन्य सामग्रियों की तुलना में काष्ठ का उपयोग करने से कार्बन उत्सर्जन कम होता है। लकड़ी एक बायोडिग्रेडेबल सामग्री है, यानी प्राकृतिक रूप से टूटने पर यह प्रदूषण नहीं करती है। यह मूलतः पर्यावरण के लिए भी लाभदायक है। परंतु काष्ठ के उपयोग के साथ कुछ समस्यायें जुड़ी हैं। इसमे पराबैंगनी प्रकाश, नमी, कवक एवं दीमक से होने वाला विघटन शामिल हैं। इसलिए, नवीनतम अध्ययनों ने नैनो-प्रौद्योगिकी के उपयोग द्वारा काष्ठ के संरक्षण को एक नई ऊंचाई प्रदान की है।

काष्ठ एक जैविक सामग्री है जिसकी अच्छी तापीय, यांत्रिक, ध्वनिक और सौंदर्यिक विशेषताएं हैं। काष्ठ का उपयोग फर्नीचर, निर्माण, आदि कार्यों के लिए किया जाता है। इसकी कार्य क्षमता बढ़ाने और इसका आकर्षण बनाने के लिए, काष्ठ की सुरक्षा करना अनिवार्य है। काष्ठ का क्षरण जैविक, भौतिक और रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण होता है जो काष्ठ आधारित उत्पादों की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, जिसके कारण काष्ठ लंबे समय में अपनी गुणवत्ता खो देती है। काष्ठ के संरक्षण और काष्ठ के कुशल उपयोग की वर्तमान प्रवृत्ति पर्यावरण पर प्रभाव को कम करने के लिए पर्यावरण के अनुकूल पदार्थों के उपयोग पर केंद्रित है। इसके अतिरिक्त, काष्ठ विज्ञान के क्षेत्र में शोधकर्ताओं को नैनो-प्रौद्योगिकी की नवीनता ने अकर्षित किया है। नैनो-आणुओं के छोटे आकार, विशाल सतह क्षेत्र और अन्य उन्नत गुणों के कारण यह एक प्रभावशाली पदार्थ बन गया है जो उत्कृष्ट गुणवत्ता वाले नवीन सामग्री बनाने में सक्षम है। अतः काष्ठ की गुणवत्ता और संरक्षण के लिए ऐसे पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है जो काष्ठ से बनाए गए उत्पादों के टिकाऊपन को बढ़ाते हैं।

प्राकृतिक रूप से, काष्ठ सेलूलोज़ फाइबर से बनी होती है जो लिग्निन और हेमीसेलुलोज़ के एक सामंजस्यपूर्ण

मैट्रिक्स के साथ संयुक्त होती है। यह समय के साथ बहुत से पर्यावरणीय कारकों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है, जिसके कारण लकड़ी के बहुलकों का निम्नीकरण और विघटन हो जाता है। साथ ही, संश्लिष्ट सामग्रियों की तुलना में काष्ठ में नमी की अस्थिरता के कारण भौतिक एवं यांत्रिक गुण प्रभावित होते हैं। पराबैंगनी प्रकाश, ऑक्सीजन और नमी के साथ मिलकर काष्ठ को धीरे-धीरे क्षयकर देती है, जिनमें पराबैंगनी प्रकाश, प्रमुख कारकों में से एक है।

2. काष्ठ के लाभ: काष्ठ में कई लाभकारी गुण होते हैं जो इसे विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए अत्यधिक मूल्यवान बनाते हैं। काष्ठ पर्यावरण के लिए आवश्यक है क्योंकि यह प्रदूषण में योगदान नहीं देती है और ऊर्जा संरक्षण को बढ़ावा देती है। काष्ठ के उत्पादन और उपयोग से कार्बन उत्सर्जन कम होता है, जिससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का प्रभाव कम होता है। इसकी गुणवत्ता को बढ़ाने और उसकी सौंदर्यता को बनाए रखने के लिए काष्ठ के संरक्षण की अधिक आवश्यकता है।

3. काष्ठ का विघटन: काष्ठ, एक प्राकृतिक सामग्री होने के कारण, विभिन्न पर्यावरणीय तत्वों, मुख्य रूप से प्रकाश, नमी और ऑक्सीजन से क्षति के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। काष्ठ का निर्माण मुख्यतः सेलुलोज, हेमीसेलुलोज़ और लिग्निन से मिलकर होता है, जिसमें से लिग्निन पराबैंगनी प्रकाश के प्रति संवेदनशील होता है। इस प्रक्रिया को अपक्षय कहा जाता है। लंबे समय तक उपयोग में रहने पर काष्ठ की भौतिक, यांत्रिक और रासायनिक गुणवत्ता को क्षय होता है। इस प्रकाश प्रभावित क्षय का प्रमुखता रूप से प्रभाव लिग्निन पर होता है क्योंकि लिग्निन में क्रोमोफोरिक समूहों की उपस्थिति होती है जो पराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित करते हैं। परिणामस्वरूप काष्ठ की संरचना नष्ट हो जाती है और काष्ठ को प्रकाशीय पीलापन देती है।

प्रकाश निम्नीकरण के अतिरिक्त काष्ठ कुछ उद्भिजक और कवक का खाद्य स्रोत भी होती है। ये कवक काष्ठ के क्षरण के लिए हाइफे (धागे की तरह के सूक्ष्म धागे) बनाते हैं। परिणामस्वरूप, सुरक्षात्मक उपाय बाहरी वातावरण में काष्ठ के स्थायित्व को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है। काष्ठ की सुरक्षा के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग किया जाता है जिसमें संशोधन तकनीक, कोटिंग अनुप्रयोग और काष्ठ संरक्षण विधियां शामिल हैं।

4. काष्ठ का संरक्षण: काष्ठ को विभिन्न सुरक्षा आवरण से पर्याप्त ढंग से आवृत किया जा सकता है, या फिर संरक्षकों से भरा जा सकता है। बाहरी तत्वों के संपर्क में आने पर काष्ठ को अपक्षय से बचाने के लिए वार्निश, स्टेन और पेंट का इस्तेमाल किया जाता है। काष्ठ की सुंदरता को बचाने और उसे संरक्षित करने के लिए काष्ठ की कोटिंग्स उपयोगी हो सकती हैं। हाल ही के वर्षों में पारदर्शी आवरण ने लोकप्रियता प्राप्त की है क्योंकि वे काष्ठ की संरचना और प्राकृतिक काष्ठमयता को बनाए रखते हैं। हालाँकि, ऐसी कोटिंग्स दीर्घकालिक सुरक्षा प्रदान करने में विफल रहती हैं क्योंकि पारदर्शी शीर्ष कोट पराबैंगनी प्रकाश के प्रति संवेदनशील होता है और अंतर्निहित काष्ठ के घटक पराबैंगनी प्रकाश की उपस्थिति में खराब हो जाते हैं। काष्ठ के टिकाऊपन को बढ़ाने और इसके कुशल उपयोग को बढ़ाने के लिए काष्ठ संरक्षण विधियों के तौर पर विषाक्त रसायन का उपयोग किया जाता है। काष्ठ के संरक्षण उपचार में गैर-दबाव और दबाव, दो प्रकार का उपचार किया जाता है। दबाव वाले उपचार में तरल को काष्ठ की संरचना में डालने के लिए दबाव और वैक्यूम का उपयोग किया जाता है, जबकि गैर-दबाव वाले उपचार में ब्रशिंग, डिपिंग और स्प्रे का उपयोग किया जाता है। पारंपरिक काष्ठ परिरक्षक जैसे कॉपर क्रोमियम आर्सेनिक (सीसीए) और क्रोमेटेड कॉपर बोरेट (सीसीबी) का उपयोग उनकी खतरनाक और विषाक्त प्रकृति के कारण पर्यावरण पर अत्यधिक दुष्प्रभाव डालता है। पारंपरिक तरीकों की कमियों के कारण, शोधकर्ता वर्तमान में नए काष्ठ परिरक्षकों के लिए संभावित समाधान के रूप में नैनो तकनीक का उपयोग करने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

5. काष्ठ विज्ञान में नैनो-प्रौद्योगिकी का उपयोग: नैनो-प्रौद्योगिकी काष्ठ विज्ञान में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें नैनोमीटर संख्याओं के आकार के साथ नई पीढ़ी के उत्पादों को बनाने की अत्याधुनिक क्षमता है। "नैनो" शब्द 100 नैनोमीटर कण के लिए उपयोग किया जाता है। नैनो सामग्री, बड़े तंत्रों की तुलना में अधिक सतह-आयोजन अनुपात के कारण सतह प्रघटन में अधिक प्रतिक्रियाशील होती हैं। यह नैनो-प्रौद्योगिकी द्वारा बेहतर गुणवत्ता वाली सामग्री बनाने की क्षमता को प्रदर्शित करता है और मूल्यवर्धन के साथ रचनात्मक उत्पादों के निर्माण के लिए नए रास्ते खोलता है। काष्ठ को विभिन्न विनाशकारी कारकों से बचाने के लिए नैनोमटेरियल का उपयोग किया जा सकता है। नैनो-प्रौद्योगिकी

एक उभरता हुआ क्षेत्र है, जिसमें नई पीढ़ी के उत्पादों को बनाने के लिए असीमित अवसर हैं। नैनो स्तरीय सामग्रियों की क्षमता के कारण काष्ठ के गुणों में सुधार किया जा सकता है और उपचार में अधिक प्रभावी और दीर्घकालिक हो सकता है। अपक्षय के कारण काष्ठ का रंग बदलने से संरक्षण के लिए नैनोकणों को जोड़ा जा सकता है. यह संरचनात्मक प्रभाव को बढ़ाकर जैविक प्रतिरोध भी देता है। काष्ठ के उपचार में नैनो-प्रौद्योगिकी के लाभों में उनका छोटा आकार, बड़ा सतह क्षेत्र और प्रभावी फैलाव स्थिरता शामिल है।

नैनोकणों द्वारा पराबैंगनी विकिरण के प्रति काष्ठ के प्रतिरोध को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकते हैं, काष्ठ के क्षय कारकों के कारण होने वाले प्रभाव को कम कर सकते हैं, नैनो उपचारित काष्ठ को अग्निरोधी बना सकते हैं और खरोंच और घर्षण के खिलाफ प्रतिरोध बढ़ा सकते हैं। नैनो सामग्री के प्रयोग से काष्ठ पर सुपरहाइड्रोफोबिक और स्व–निर्मलन सतह भी बनाई जा सकती हैं। वर्तमान समय में, प्राकृतिक और स्थायी स्रोतों से प्राप्त उत्पादों की बड़ी मांग है। सेलूलोज़ एक गैर-विषाक्त और प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला बायोडिग्रेडेबल बहुलक है। यह सामग्री नैनोसूक्ष्मिक कोषकों को बनाने के लिए यांत्रिक या रासायनिक रूप से उपयोग की जा सकती है। नैनोसेल्यूलोज के आविष्कार ने अनुसंधान के साथ-साथ औद्योगिक स्तर पर भी काफी ध्यान आकर्षित किया है और नवीन अवधारणाओं के साथ नई सामग्री के उत्पादन पर अध्ययन किया जा रहा है। नैनोमैटेरियाल काष्ठ को पराबैंगनी (UV) प्रतिरोध प्रदान करते हैं और इसकी सुंदरता भी बनाए रखते हैं। नैनो-स्केल आकार पराबैंगनी फ़िल्टरिंग प्रभाव में बड़ी वृद्धि का कारण है। टाइटेनियम डाइऑक्साइड (TiO2), जिंक ऑक्साइड (ZnO) और सीरियम ऑक्साइड (CeO_2) इस संदर्भ में इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ नैनोकण हैं। अप्राकृतिक गुणों के कारण नैनो सामाग्रियां शोधकर्ताओं को आकर्षित कर रही हैं, जो काष्ठ की नमी और कीटाणुओं के खिलाफ सहनशक्ति को बढ़ा सकती हैं। नैनो रूप में, संभावित काष्ठ संरक्षक तत्वों में जिंक (Zn), कॉपर (Cu), चांदी (Ag) और बोरॉन (B) शामिल हैं; यौगिक रूप में, जिंक ऑक्साइड (ZnO), कॉपर ऑक्साइड (CuO) और टाइटेनियम डाइऑक्साइड (TiO_2) शामिल हैं। तालिका 1 काष्ठ के गुणों में सुधार के लिए विभिन्न नैनोमटेरियल के उपयोग को दर्शाती है।

तालिका 1. काष्ठ गुणों में सुधार के लिए उपयोग होने वाले नैनोकण

क्रमांक	गुणवत्ता में सुधार	नैनो सामग्री का उपयोग
1.	पराबैंगनी संरक्षण	जिंकऑक्साइड (ZnO), टाइटेनियमडाइऑक्साइड (TiO_2), सीरियमऑक्साइड (CeO_2)
2.	जल संरक्षण	ZnO, SiO_2, TiO_2, आदि
3.	आग संरक्षण	ZnO, SiO_2, TiO_2, नैनोक्ले, कार्बननैनोट्यूब्स (CNT), एल्युमिनियमऑक्साइड
4.	यांत्रिक गुणों में सुधार	चांदी के नैनोधातु (AgNP), नैनोसिलिका, ZnO, आदि
5.	जैविक संरक्षण	ZnO, कॉपरऑक्साइड (CuO), TiO2, AgNP, आदि

6. भविष्य की चुनौतियां: काष्ठ विज्ञान में नैनो-प्रौद्योगिकी के उपयोग के साथ, भविष्य में इस क्षेत्र में विशेष विस्तार की संभावना है। नैनो-प्रौद्योगिकी की विकास प्रक्रिया को जारी रखने से, काष्ठ के उत्पादों की गुणवत्ता, सुरक्षा और प्रदर्शन क्षमता में और भी अधिक सुधार हो सकते हैं। नैनो-माप की नवीनतम तकनीकों का अध्ययन और विकास, नैनो संरचना के द्वारा नवीनतम सामग्रियों का निर्माण और उन्नत धातु संरक्षण तकनीकों का विस्तार काष्ठ विज्ञान के क्षेत्र में संभव है। हालांकि, नैनो-प्रौद्योगिकी के विकास में विभिन्न प्रकार की चुनौतियां हैं। एक मुख्य चुनौती है नई और नवाचारी सामग्रियों के विकास की आवश्यकता। इसके लिए विशेषज्ञों को अधिक अध्ययन और विश्लेषण की आवश्यकता होगी ताकि वे नवीनतम नैनो-माप के अनुसरण कर सकें और उन्नत सामग्रियों के निर्माण में सफलता प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त, काष्ठ विज्ञान क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता वाले औद्योगिक उत्पादों के विकास के लिए सुरक्षा, पर्यावरणीय संरक्षण, और धातु स्रोतों का आविष्कार आवश्यक होगा।

नैनो-प्रौद्योगिकी पर आधारित काष्ठ उद्योग अनुसंधान एक तेजी से बढ़ता हुआ क्षेत्र है जिसमें नवीनतम उत्पादों के उत्पादन की क्षमता है, हालाँकि, विशिष्ट क्षेत्रों में अभी भी और अधिक शोध की आवश्यकता है। नैनोमैटेरियल के सुरक्षित उपयोग और निपटान को सुनिश्चित करने के लिए, उनकी दीर्घकालिक विषाक्तता और मानव और पर्यावरण सुरक्षा पर उनके प्रभाव पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

बाँस : प्रवर्धन एवं प्रबंधन

श्री आलोक यादव, श्री कुलदीप चौहान
एवं श्री राहुल निषाद
भा.वा.अ.शि.प.-पारि-पुनर्स्थापन अनुसंधान केंद्र, प्रयागराज

बाँस मानव जीवन को प्रकृति की अदभुत देन है। संख्या तथा विविधता की दृष्टि से किसी उगाये जाने वाले पादप के इतने उपयोग नहीं होते जितने बाँस के होते हैं। इसकी अद्त विशेषताओं एवं मानव जीवन में इसकी बहु-उपयोगिता को देखते हुए ही इसे हरित स्वर्ण या ग्रीन गोल्ड भी कहते हैं। इसे गरीबों का काष्ठ भी कहा जाता है। वैज्ञानिक रूप से यह पृथ्वी पर सबसे तेज बढ़ने वाला पौधा है। इसकी कुछ प्रजातियाँ एक दिन (24 घंटे) में 121 सेंटीमीटर (47.6 इंच) तक बढ़ जाती हैं।

बाँस एक अत्यंत बहुमुखी पौधा है जो आसानी से विभिन्न जलवायु और विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगने के अनुकूल है। यह पोषक तत्वों से भरपूर और पोषक तत्वों की कमी, दोनों प्रकार की मिट्टियों में उग जाता है। प्राकृतिक रूप से यह ऊष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में 46° और 47° अक्षांश के बीच 4000 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। औद्योगिक क्षेत्रों में बाँस की तेजी से बढ़ती हुयी मांग तथा जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप बाँस के प्राकृतिक वन समाप्त हो रहे हैं। ग्रामीण कुटीर उद्योगों तथा लुगदी के लिए कच्ची सामग्री (बाँस) की अत्यंत कमी महसूस की जा रही है। अतः बाँस का उपयोग करने वाले वन आधारित उद्योगों एवं ग्रामीणों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बंजर, निम्नीकृत भूमियों में या कृषि फसलों के साथ बाँस को उगाने के सामूहिक प्रयास किए जाने चाहिए।

बाँस घास परिवार पोएशी के बंबूसोइडी उप परिवार का एक सदस्य है जोकि 12 उप परिवारों में से एक है एवं यह यूरोप एवं अंटार्टिका को छोड़कर दुनिया के अधिकतर महाद्वीपों में पाये जाते हैं। दुनिया में इसकी 1482 प्रजातियां एवं 119 जातियाँ पायी जाती हैं। प्रजातियों की संख्या में एशिया का स्थान प्रथम है इसके बाद दक्षिणी अमेरिका का स्थान आता हैं। भारत में बाँस का विस्तार ऊष्णकटिबंधीय से लेकर सब-अल्पाइन ज़ोन तक है। यहां पर इसकी 29 जातियाँ एवं 148 प्रजातियाँ वर्तमान में पाई जाती है जिसमें जंगली और खेती करने योग्य दोनों तरह के बाँस शामिल हैं। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों (असम, अरुणांचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम एवं पश्चिमी बंगाल के पहाड़ी क्षेत्र) में बाँस की लगभग 90 प्रजातियां पायी जाती हैं। इनमें भी अरुणाचल प्रदेश में तकरीबन 70 से अधिक प्रजातियां पायी जाती हैं। पूर्वोत्तर भारत बाँस की विविधिता में ही विशेष नहीं हैं, यहां की तकरीबन 41 प्रजातियां स्थानिक (endemic) हैं।

बाँस प्रवर्धन विधियाँ:

देश में 13.47 मिलियन टन बाँस का उत्पादन होता है। यह उत्पादन कुल खपत (26.69 मिलियन टन) का लगभग आधा है। बाँस, घरेलू तथा औद्योगिक दोनों ही तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यापक रूप से उपयोग में लाया जाता है। अतः बाँस की खेती किसानों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी है। बाँस प्रवर्धन बीजों अथवा कायिक अंगों द्वारा किया जा सकता है।

1. बीज द्वारा प्रवर्धन:

बाँस में पुष्पण की अवधि/अंतराल निश्चित नहीं है। सामान्यतः पुष्पण नवम्बर-फरवरी माह की अवधि में होता है। बाँस पर फूल छिटपुट तथा समूहों में भी आते हैं। एकल पुष्पण में जिन बाँसों पर फूल आते हैं, वे मर जाते हैं। सामूहिक पुष्पण अधिकतर लम्बे समय बाद हुआ करते हैं और इसकी अवधि प्रजाति के अनुसार भिन्न-भिन्न (30-80 वर्ष तक) पायी जाती है। बाँस का फल कैरियोप्सिस प्रकार का होता है। बाँस बीज सामान्यतः फरवरी के मध्य से मई माह तक तैयार हो जाता है। बीज पक जाने के बाद बाँस की संकुल (बखार) सूख जाती है। पुष्पण के बाद बनने वाले बीज को एकत्रित और स्वच्छ किया जा सकता है। स्वच्छ बीजों को विशेष भंडारण तकनीकों जैसे नियंत्रित नमी, न्यूनतम तापमान आदि के द्वारा 6 माह या एक वर्ष से ज्यादा समय के लिए भंडारित किया जा सकता है। बाँस के बीज की अंकुरण क्षमता

साधारणतया 1-2 महीने होती है। इसे 6-18 महीने तक बढ़ाने के लिए, सूखे हुए (8 प्रतिशत नमी युक्त) बीजों को सिलिका जेल अथवा जल रहित कैल्सियम क्लोराईड में संचित किया जाता है। यदि भंडारण उचित ढंग से न किया जाए तो अंकुरण क्षमता प्रायः नष्ट हो जाती है। संग्रहित बीज को उचित तरह से साफ करके 1-2 घंटा धूप में सुखाया और प्रसुप्ति को विखण्डित करने के लिए 6-12 घंटे तक पानी में भिगोया जाए और बुआई से पूर्व 10-20 मिनट पहले उचित रूप से जल निकासी की जाए।

2. नाल (कल्म) रोपण

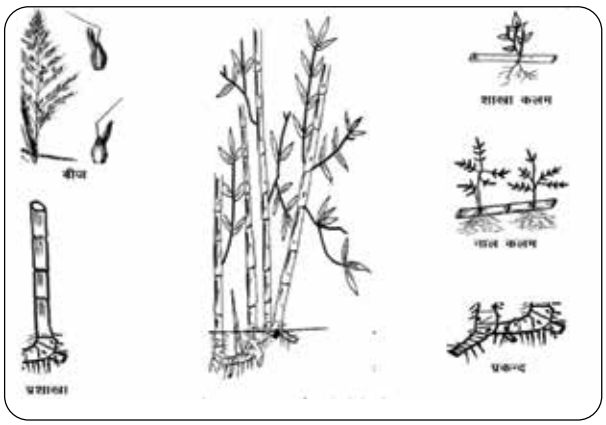

बाँस प्रवर्धन विधियां

एक से तीन वर्ष पुरानी नाल की सामान्यतः एक से दो गांठों वाली कल्मों को तिरछा या क्षैतिजाकार स्थिति में रोपा जाता है। सामान्यतः रोपण के लिए अप्रैल-मई के माह उपयुक्त माने जाते हैं। क्षैतिजाकार स्थिति से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। उच्च आर्दता वाले स्थानों में इस विधि से कई प्रजातियों की आसानी से रोपण सामग्री तैयार की जा सकती है।

कुछ प्रजातियों के मूल विकास में सफलता प्राप्त करने हेतु मूल हार्मोन तथा अन्य रसायनों जैसे इंडोल ऐसीटिक एसिड (आई.ए.ए.), इंडोल ब्यूटिरीक एसिड (आई.बी.ए.), नैप्थ्लीन एसीटिक एसिड (एन.ए.ए.), कौमरीन और बोरिक एसिड के साथ उपचारित किया जाता है।

नाल कल्म के लिए उन नालों का चयन किया जाता है जो 1-2 वर्ष पुराने हों और जिनमें स्वस्थ्य कलिकायें उपस्थित होती हैं। टुकड़ों का चुनाव कल्म के निचले व मध्य भागों से करना चाहिए। मध्य मार्च से मई का समय कल्म कटिंग के लिए उत्तम है। गांठें जितनी ज्यादा होंगी कल्म में सफलता की संभावनाएं भी उतनी अधिक होगी। कल्म खण्डों में रोपण के एक सप्ताह में अंकुर तथा 45-90 दिनों में जड़ों का निर्माण हो जाता है।

3. शाखा कटिंग:

शाखा कटिंग, प्रवर्धन में आसानी के कारण प्रयोग होने वाली व्यवहारिक एवं प्रचलित पद्धतियों में से एक है। नाल की भाँति, शाखायें भी तने का भाग है। कांटा बाँस और लाठी बाँस में मोटी भित्ति तथा मोटी शाखाओं वाली प्रजातियाँ इस विधि का आदर्श उदाहरण हैं।

शाखाओं का चयन 1-2 वर्ष पुराने कल्मों से करना चाहिए। कटिंग की छटनी सीकेटर द्वारा पत्तियों, छोटी शाखाओं तथा शाखाओं के सिरे एवं शाखाओं की छटनी 2-6 गांठ वाले स्वस्थ कलिकाओं से करनी चाहिए। कल्मों का रोपण बेड मे 2-3 से.मी. की दूरी पर तथा आधार को 7-10 से.मी. गहराई पर करना चाहिए। अंकुरण सामान्यतः 7-10 दिनों पश्चात दिखाई देता है परन्तु जड़ों के प्रेरण की अवधि 14-20 दिन तथा जड़ों का भलीभांति विकास 30-60 दिनों मे दिखाई देता है। कल्म के आधार से नवीन कल्म का विकास 30-60 दिन की समयावधि में होता है।

4. क्लम्प प्रबंधन:

नाल और शाखा कटिंग्स द्वारा बांस प्रवर्धन की प्रक्रिया

बाँस की गुणवत्ता उसके मजबूत सीधे तने, हल्का वजन, काम करने की सहजता आदि पर निर्भर करती है। अच्छी गुणवत्ता वाले बाँस काष्ठ एवं खाने योग्य प्ररोह (बैम्बू शूट) के उत्पादन के लिए क्लम्प (बखार/पुंज/संकुल) का स्वस्थ होना अतिआवश्यक होता है। बाँस का प्रबंधित

क्लम्प खुला एवं स्वस्थ होता है जो कि उच्च गुणवत्ता वाली काष्ठ का उत्पादन करता है। जिन क्लम्पों का प्रबंधन नहीं किया जाता है, उसमें बाँस एक दूसरे से उलझे रहते हैं व कमजोर होते हैं। इन बाँसों की कटाई मुश्किल होती हैं साथ ही उत्पादकता भी कम हो जाती हैं।

अधिक उत्पादकता सुनिश्चित करने एवं अपव्यय को कम करने के लिए क्लम्प प्रबंधन की कुशल एवं नियमित विधियों को अपनाना चाहिए। इसके अंतर्गत श्रृंखलावार तरीके से निम्नलिखित गतिविधियों को अपनाना चाहिए।

4.1. क्लम्प का चयन:

लम्बे व मजबूत बाँस प्राप्त करने के लिए हमें ज्यादातर नयें संकुलों का चयन करना चाहिए जो कि प्रबंधन के उपरांत तेजी से उत्पादकता बढ़ायें। क्लम्प का चयन निम्नलिखित आधार पर किया जाता है।

- रोग एवं फफूँदी मुक्त
- तीव्र विकास की क्षमता
- बाँसों के मध्य कम दूरी
- आकार एवं व्यास में समुचित विकास

4.2. क्लम्प में मृदा उपचार:

बांस की कटाई के पश्चात् नए प्रवर्धन हेतु अप्रैल से मई माह में झुरमुट के चारों तरफ ऊपर-ऊपर मिट्टी चढ़ाएं जो क्लम्प को चारों तरफ नये राइजोम के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है एवं तापमान सामान्य बनाये रखती है। इस मिट्टी में आवश्यक्तानुसार गोबर खाद एवं दीमक नाशी दवा का मिश्रण करना लाभकारी होता है। झुरमुट के चारों तरफ मिट्टी चढ़ाने हेतु आस-पास की मिट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा मानसून में जलभराव के कारण विभिन्न प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो सकती है तथा बाँस मृत्यु दर बढ़ने के साथ-साथ उत्पादन क्षमता क्षीण हो सकती है। नये अंकुरण प्रस्फुटित होने के पूर्व हल्की गुड़ाई गुणवत्ता एवं उत्पादकता में वृद्वि करती हैं।

4.3. विरलन :

इसके अंतर्गत सभी विकृत और क्षतिग्रस्त क्लम्प (बखार/संकुल) को हटा दिया जाना चाहिए, जो सुनिश्चित करता है कि स्वस्थ क्लम्प बिना किसी संघर्ष के उत्पादक आयु तक पहुंच सके। यह विधि संकुल में प्रबंधन हेतु जगह भी प्रदान करती है और नये क्लम्प के विकास एवं उत्पादन के लिए प्रोत्साहन के रूप में भी कार्य करता है। एक बार जब पुराने क्लम्प को हटा देते हैं, तो अगला कदम क्लम्प (बखार/संकुल) को झुण्ड मुक्त करना होता है। क्षतिग्रस्त मुड़े हुए या अन्य बाँस जो बहुत करीब विकसित हो रहे हों उन्हें बाहर निकाल देना चाहिए। बाँस की कटाई सदैव जमीन स्तर के ऊपर से करें। अंकुरण के प्रारंभिक और अंतिम चरणों में कमजोर प्ररोहों (बैम्बू शूट) को काट दिया जाता है।

4.4. शाखा कर्तन:

शाखा कर्तन का अभ्यास केवल उन प्रजाातियों में किया जाता है जो बम्बूसा बाँस की तरह कांटेदार मोटे बाँस का उत्पादन करती हैं। लगभग 4-5 वर्ष के पौधों की शाखाओं की छंटाई करनी चाहिए जिसके लिये अक्टूबर से फरवरी माह उपयुक्त समय होता है। प्रत्येक क्लम्प में एक साल पुराने बाँसों को चिन्हित करना चाहिए। 1.5 मीटर ऊँचाई तक की सभी शाखाओं के डंठल पर एक गांठ छोड़कार छटनी की जानी चाहिए। प्रबंधन में सुधार और क्लम्प तक पहुंच के लिए निचली शाखाओं को हटा दें और उनकी दूसरी या तीसरे गांठ को छोड़कर छटनी करनी चाहिए ताकि कवक क्लम्प में प्रवेश न कर सके। एक बार जब झुरमुट पुंज पतला हो जाता है और शाखाएं छंट जाती है तो इसमें 1 से 3 साल पुराने बाँस और अंकुर होने चाहिए। जब बाँस 8 या उससे अधिक वर्ष का होता है तो सूट की संख्या 12 तक बढ़ सकती है। इसका कारण यह है कि यदि बाँस का मूल आधार बड़ा और मजबूत होता है तो अधिक से अधिक बाँस का समर्थन करता है।

4.5. खाद एवं उर्वरक का प्रयोग:

वैज्ञानिक ढंग से खेती करने और अधिक से अधिक उत्पादकता के लिए खाद एवं उर्वरक का प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है। पौधे लगाते समय गोबर की खाद के साथ 50 ग्राम यूरिया तथा 100 ग्राम सल्फर फास्फेट प्रति गड्ढे 45 घन सेमी की दर से डाला जाता है। बाद में पौधे के स्वस्थ रखने के लिए गोबर की खाद के साथ 50 ग्राम कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट प्रति पुंज/संकुल की दर से डाली जाती है। यदि इसका प्रयोग वर्षा ऋतु के मध्य में किया जाए तो परिणाम और अच्छे होते

हैं। वर्षा ऋतु के पूर्व हर एक पुंज को (आच्छादन) ढक दें, तो देखते हैं कि इससे भी वर्षा ऋतु के बाद स्वस्थ एवं रोग मुक्त अधिक मात्रा में अंकुर दिखाई देते हैं।

4.6. दीमक से बचाव:

दीमक, बाँस के क्लम्प के लिये एक गंभीर समस्या है। आमतौर पर पुराने, क्षय या बीमार, चोटिल या आंशिक रूप से जलाए गए बाँस पर दीमक हमला करते हैं, इस कारण से यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि सभी पुराने या सड़े बाँस को बाहर निकाला जाए। यह दीमक से सुरक्षा प्रदान करने या जोखिम को कम करने का प्रभावी साधन है।

4.7. आग से बचाव:

आग बाँस के वृक्षारोपण और अन्य प्राकृतिक स्टैंड के लिए एक बड़ा खतरा है। खासकर शुष्क मौसम के दौरान सूखी पत्तियां, शाखाएं, टहनियां और मृत बाँस आसानी से आग पकड़ सकते हैं और एक बड़े क्षेत्र में आग का प्रसार कर सकते हैं। आग के प्रसार को रोकने के लिए पुंज के चारों तरफ आद्र या भीगी हुई पत्तियों के ढेर को फैला रखना चाहिए या सूखी पत्तियों के कूड़े को हटा देना चाहिए। वृक्षारोपण क्षेत्र की सुरक्षा के लिए फायर ब्रिक्स की स्थापना की जानी चाहिए और वृक्षारोपण की पत्तियों के मध्य कम से कम 10 से 15 मीटर की चौड़ाई वाले गलियारे होने चाहिए जो आमतौर पर पूरे वृक्षारोपण में आग रोकने के लिए पर्याप्त होते हैं।

बाँस की संकुलो का रख-रखाव के प्रमुख बिंदु:

प्रायः यह देखा गया है कि प्रत्येक वर्ष पुराने बाँस काटने के बाद बाँस के संकुल की उपयुक्त देखभाल न होने की वजह से, उत्पादन में कमी आ जाती है। बाँस संकुल की उत्पादन क्षमता विधिवत बनाए रखने के लिए निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

- दो से तीन वर्ष पुराने बाँस को नवम्बर से फरवरी माह के बीच काटना उपयुक्त होता है।
- बांस कटाई के पश्चात नए प्रवर्धन हेतु संकुल पर अप्रैल-मई माह में चारों तरफ मिट्टी अवश्य चढ़ाये। इस मिट्टी में आवश्यकतानुसार गोबर खाद एवं दीमक नाशक दवा का मिश्रण करना लाभकारी होता है।
- यदि बाँस संकुल के बीच में खाली जगह हो गई हो अथवा संकुल अवांछित दिशा में जहां-तहां फैल रहा हो तो दिशाहीन बढ़ रही प्रशाखाओं प्रखण्डों को उखाड़ कर संकुल के खाली स्थान में रोपकर, कम जगह में अधिक पैदावार ली जा सकती है तथा संकुल की अवांछित दिशा में वृद्धि रोकी जा सकती है।
- फरवरी-मार्च माह में, बाँस की गिरी हुई पत्तियों को एकत्र करके कम्पोस्ट खाद बनाने में प्रयुक्त करें अन्यथा रोपण क्षेत्र से उचित दूरी पर एकत्र करके जला दें क्योंकि यह शीघ्र ही उग्र अग्नि का रूप धारण कर लेती है जिससे संपदा नष्ट होने की आशंका बनी रहती है।
- जिन स्वस्थ संवर्धन योग्य बखार में 5 से कम बाँस हों, उनमें कटाई नहीं करनी चाहिए, अपितु संवर्धन कार्य ही किया जाना चाहिए।
- सामूहिक पुष्पण की स्थिति में बाँस को पुष्पण के तुरंत बाद नहीं काटना चाहिए। अपितु बीज के सूख कर गिर जाने के उपरांत ही पूर्ण कटाई की जानी चाहिए।
- बांस रोपण क्षेत्रों की, पशु-चराई एवं अग्नि से पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। कटान के बाद वाले वर्षा काल अर्थात् जून से अक्टूबर माह तक, पशु चराई रोकने के प्रभावी कदम उठाये जाने चाहिए।
- सभी टेढ़े-मेढ़े व टूटे हुये बाँसो को काटकार, बाँस समूह से निकाल देना चाहिए, चाहे वे बाँस नये ही क्यों न हों।

विविधा

जामुन

डॉ. शैलेंद्र कुमार
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

जामुन मूल रूप से भारत का पौधा है, जिसकी उत्पत्ति भारत में मानी जाती है। यह दक्षिण एशिया तथा इंडोनेशिया आदि देशों में पाया जाता है। इसको विभिन्न नामों जैसे जामुन, राजमन, जमाली, जंबोलन जाम्बस, ब्लैक प्लम तथा ब्लैक बेरी आदि से जाना जाता है। इसकी खेती व्यापक तौर पर फिलीपींस, म्यांमार तथा अफगानिस्तान में की जाती है। इसका वानस्पतिक नाम *सियाजियम क्यूमिनी* है। यह एक औषधीय युक्त अधिक शाखाओं वाला, छायादार तथा सदाबहार वृक्ष है तथा इसकी ऊंचाई 15 से 30 फीट होती है। पत्तियाँ 10 से 15 से.मी. लंबी तथा 4 से 6 से.मी. चौड़ी तथा चिकनी होती है। इसकी छाल भूरे रंग की और हल्की सी चिकनी होती है। जामुन के वृक्ष पर गहरे बैंगनी रंग के फल लगते हैं, जो खाने में स्वादिष्ट एवं हल्का सा खट्टा होता है। इसका फूल मार्च तथा अप्रैल माह में खिलते हैं तथा फल गर्मी में पाया जाता है। फल का रंग शुरूआत में हरा तथा अंडाकार होता है, पकने पर इसका रंग बैंगनी गूदेदार हो जाता है।

जामुन का पेड़ औषधीय युक्त वृक्ष के साथ-साथ इसके फल में बहुत सारे औषधीय गुण पाए जाते हैं। इनकी पत्तियों, फल की गुठली, तना, छाल आदि का उपयोग आयुर्वेदिक रूप में किया जाता है। आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य चरक द्वारा सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'चरक संहिता' में जामुन के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसकी पत्तियाँ महिलाओं की शारीरिक क्षमता की शक्ति वृद्धि करके संतुलन में रखती है। इसका फल फ्रक्टोस, ग्लूकोज तथा आयरन का मुख्य स्रोत है। जामुन में बहुत सारे महत्वपूर्ण पोषक तत्व पाएं जाते हैं, जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फाइबर, विटामिन बी, विटामिन सी, कैल्सियम, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सोडियम आदि, जो हमारे लिए लाभकारी होते हैं। इसमें एंटी बैक्टीरियल, एंटी आक्सीडेंट तथा एंटी इंफेक्टिव गुण पाए जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होते हैं। इनकी पत्तियाँ दांतों के रोग में मुंह के छालों, मुहांसों, त्वचा रोग तथा घाव आदि में उपयोग किया जाता है। जामुन के फल को खाने से पेट में पथरी गल जाती है। जामुन का सिरका मधुमेह, लीवर की बीमारी, पाचन क्रिया, भूख का बढ़ना, त्वचा में निखार आना, पेट में कीड़ों को खत्म करने में उपयोग किया जाता है। जामुन की गुठली को पीसकर तथा आंवला के पाउडर में मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से आंखों का रोग तथा श्वेतप्रदर की समस्या खत्म हो जाती है। इतने सारे फायदे के बावजुद भी इसके महत्व को न समझते हुए इसको लगातार खत्म किया जा रहा है।

यह सत्य है कि भारत में पेड़ों की पूजा की जाती है। पेड़ हमारे जीवन का मूल आधार तथा बहुउपयोगी है। पेड़ों

के बिना प्रथ्वी पर जीवों की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारत में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों की प्रजातियां पाई जाती हैं जिसमें से कुछ पेड़ों का महत्व हमारे जीवन में अहम भूमिका रखता है। आज के आधुनिकीकरण के साथ-साथ बहुत सारे पेड़-पौधों की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी है तथा कुछ पेड़ों की प्रजातियाँ विलुप्त होने की कगार पर हैं। उनमें से एक जामुन का भी पेड़ है जो पहले की अपेक्षा अब बहुत कम रह गये हैं। अगर यही हाल रहा तो एक दिन जामुन का नाम किताबों तक सिमट कर रह जायेगा। मुझे याद है कि सड़क के किनारे जामुन के बहुत सारे पेड़ों की संख्या हुआ करती थी किन्तु आज उस सड़क से गुजरते हैं तो कुछ ही पेड़ नजर आते हैं। ये क्या है। जिन्दगी तो बदल रही है, सड़कों का चौड़ीकरण तथा आधुनिकीकरण से अच्छा तो लगता है किन्तु दूरगामी परिणाम पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। आजकल जलवायु परिवर्तन का जिक्र हर देश में उच्च स्तर पर उठाया जाता है। लेकिन परिणाम कितने सकारात्मक प्राप्त हो रहे है इस पर गहन अध्ययन की जरुरत है।

''जमाने की चकाचौंध ने
कुदरत को मिटा दिया,
कुदरत की धरोहर को
मिट्टी में मिला दिया,
बचपन की हकीकत,
यादें बनकर रह गई,
सब कुछ कब्र में दफन हो गया
बस तस्वीरें किताबों में सिमटकर रह गई।''

इतने ऊँचे उठो कि जितना उठा गगन है

इतने ऊँचे उठो कि जितना उठा गगन है।
देखो इस सारी दुनिया को एक दृष्टि से
सिंचित करो धरा, समता की भाव वृष्टि से
जाति भेद की, धर्म-वेश की
काले गोरे रंग-द्वेष की
ज्वालाओं से जलते जग में
इतने शीतल बहो कि जितना मलय पवन है।

नये हाथ से, वर्तमान का रूप सँवारों
नयी तूलिका से चित्रों के रंग उभरो
नये राग को नूतन स्वर दो
भाषा को नूतन अक्षर दो
युग की नयी मूर्ति-रचना में
इतने मौलिक बनों कि जितना स्वयं सृजन है।

लो अतीत से उतना ही जितना पोषक है
जीण-शीर्ण का मोह मृत्यु का ही द्योतक है
तोड़ो बंधन, रुके न चिंतन
गति, जीवन का सत्य चिरंतन
धारा के शाश्वत प्रवाह में
इतने गतिमय बनो कि जितना परिवर्तन है।

चाह रहे हम इस धरती को स्वर्ग बनाना
अगर कहीं हो स्वर्ग, उसे धरती पर लाना
सूरज, चाँद, चाँदनी, तारे
सब हैं प्रतिपल साथ हमारे
दो कुरूप को रूप सलोना
इतने सुंदर बनो कि जितना आकर्षण है।

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

भारतीय तुरही का पेड़

डॉ. अश्वनी कुमार एवं श्री मनोज कुमार
भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वानस्पतिक नाम: *ओरोक्सिलम इंडिकम* (*Oroxylum indicum* (L.) Benth. ex Kurz)

परिवार: बिग्नोनियासी (Bignoniaceae)

सामान्य नाम: भारतीय तुरही का पेड़, ओरोक्सिलम, भारतीय तुरही का फूल, ब्रोकन बोन्स ट्री, दराँती का पेड़, टाट पलांगा।

हिंदी: कुटन्नट, दीर्घवृन्त, पत्रोर्ण, पूतिवृक्ष, भूत वृक्ष, मण्डूक, वटुक, शल्लक, शूरण।

संस्कृत: अरलु, श्योनक।

अंग्रेजी: ब्रोकन बोन्स ट्री, इंडियन ट्रम्पेट फ्लावर, मिडनाइट हॉरर।

विवरण:

ये पेड़ लगभग 18 मीटर तक ऊँचे होते हैं। तने का व्यास 15-20 सेमी होता है तथा इनकी छाल भूरी व मुलायम होती है। बड़े पत्तों के डंठल मुरझा जाते हैं और पेड़ से गिर जाते हैं और ट्रंक के आधार के पास इकट्ठा हो जाते हैं, जो टूटे हुए अंगों की हड्डियों के ढेर की तरह दिखाई देते हैं। यह पेड़ रात में खिलने वाला है और फूल चमगादड़ों द्वारा प्राकृतिक परागण के लिए अनुकूलित होते हैं। फल. 1.5 मीटर (4.9 फीट) तक लंबे होते हैं जो शाखाओं से नीचे लटकते हैं और तलवारों के समान होते हैं। लंबे फल नीचे की ओर झुकते हैं और रात में एक बड़ी चिड़िया के पंख या लटकते दरांती या तलवार जैसे दिखते हैं, जिससे इसे "डैमोकल्स का पेड़" नाम दिया गया है। बीज पपीरी पंखों के साथ गोल होते हैं।

पत्तियाँ:

यौगिक पत्तियां विपरीत पन्ना के साथ बड़ी और लगभग त्रिकोणीय होती हैं।

पुष्पक्रम/ फूल:

फूल आमतौर पर रात में खिलते हैं, दुर्गंध के साथ। फूल, बड़े, लाल-बैंगनी और भीतर से गुलाबी-पीले रंग के होते हैं।

फल और बीज

फल सपाट, कैप्सूल 0.33-1 मीटर लंबे और 5-10 सेमी चौड़े, तलवार के आकार के होते हैं। कैप्सूल बैंगनी भूरा होता है। इसमें चपटे चौड़े कागजी पंखों के साथ कई बीज होते हैं ।

भारतीय तुरही का पेड़

भारतीय तुरही के पेड़ की पत्तियाँ

भारतीय तुरही के पेड़ की छाल

भारतीय तुरही के पेड़ पर कैप्सूल

भारतीय तुरही के पेड़ के कैप्सूल

कागजी पंखों के साथ कई बीज

वितरणः

यह पेड़ भारतीय उपमहाद्वीप, हिमालय की तलहटी का मूल निवासी है, जिसका एक हिस्सा भूटान और दक्षिणी चीन, इंडोचाइना और मलेशिया क्षेत्रों तक फैला हुआ है। भारत में यह पेड़ लगभग 1200 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। यह असम में मानस राष्ट्रीय उद्यान के वन बायोम में दिखाई देता है। राजस्थान में बांसवाड़ा जिले के वन क्षेत्रों में इसे बड़ी संख्या में पाया, उगाया और लगाया जाता है। यह केरल (दक्षिण भारत) के दुर्लभ, लुप्तप्राय और संकटग्रस्त पौधों की सूची में बताया गया है।

प्रजननः

पेड़ में प्राकृतिक रूप से बीजों द्वारा प्रजनन होता है, जो बरसात के मौसम की शुरुआत में अंकुरित होते हैं। प्रारंभिक अवस्था में मध्यम छाया आवश्यक है। मार्च-अप्रैल के दौरान नर्सरी में बीज बोकर कृत्रिम प्रजनन किया जा सकता है और पहली या दूसरी बारिश के मौसम में पौधों की रोपाई की जा सकती है। पेड़ को रूट सकर्स प्रत्यारोपण करके भी उगाया जा सकता है, जो कि बहुत अधिक मात्रा में पैदा होते हैं । पेड़ की औसत वार्षिक परिधि की वृद्धि 4 - 6.4 सें.मी. होती है।

उपयोगः

पेड़ को अक्सर इसकी अजीब उपस्थिति के लिए एक सजावटी पौधे के रूप में उगाया जाता है। हिमालय में लोग अपने घरों की छत से इसके बीजों से बनी मूर्तियों या मालाओं को लटकाते हैं, विश्वास है कि वे सुरक्षा प्रदान करते हैं। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले के लोग इसके बीजों को (पंखो सहित) अपनी पहाड़ी टोपी में लगाते हैं।

भोजन के रूप में उपयोगः

यह खाद्य पत्तियों, फूलों की कलियों, फलियों और तनों वाला एक पौधा है। उत्तर पूर्व भारत के बोडो के बीच करोंगकंडई के रूप में जाना जाता है, इसके फूल और फल चावल के साथ कड़वे साइड डिश के रूप में खाए जाते हैं। यह अक्सर किण्वित या सूखे मछली के साथ तैयार किया जाता है और उनके द्वारा औषधीय उपयोगों के लिए माना जाता है। फली बांग्लादेश और भारत के चटगांव पहाड़ी इलाकों में चकमा लोगों द्वारा भी खाई जाती है। करेन लोगों के बीच यह पौधा एक महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है, जो इसके औषधीय महत्व के लिए भी इसकी सराहना करते हैं। फूलों की कलियों को उबालकर अचार बनाया जाता है।

पारंपरिक दवाओं में उपयोगः

इसके बीजों का उपयोग पारंपरिक भारतीय आयुर्वेदिक और चीनी दवाओं में किया जाता है। जड़ की छाल आयुर्वेद और अन्य लोक उपचारों में यौगिक योगों में उपयोगी मानी जाने वाली सामग्री में से एक है। यह एक प्रभावी औषधीय जड़ी-बूटी है। यह दशमूल में से एक है जिसका उपयोग बुखार, दस्त आदि में किया जाता है।

सूखे के कारण, समस्याएं एवं समाधान

श्री आशीष कुमार एवं डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

देख रहे सब जग में, कैसी नीर कि पीर।
बूंद बूंद में है बसी, मानव तेरे भाग्य की लकीर॥

प्रस्तावना:

वर्तमान समय में सूखा पड़ना एक स्थायी समस्या बन गई है। जब किसी छेत्र विशेष में काफी समय तक वर्षा नहीं होती तो ऐसी अवस्था को सूखा कहा जाता है। औसतन वर्षा से कम वर्षा होना जैसे कि 75% से काम भी सूखा कि श्रेणी में आता है सूखा, जिसके परिणामस्वरूप पानी की कमी होती है, मुख्य रूप से वर्षा की कमी के कारण होता है। स्थिति समस्याग्रस्त है और सूखा प्रभावित क्षेत्रों में रहने वालों के लिए घातक साबित हो सकती है। यह किसानों के लिए विशेष रूप से अभिशाप है क्योंकि यह उनकी फसलों को नष्ट कर देता है। लगातार अनावृष्टि जैसी स्थिति भी मिट्टी को कम उपजाऊ बनाती है।संयुक्त राष्ट्र सभा द्वारा सन 1995 में 17 जून को इस समस्या पर जनजागरण एवं रोकथाम हेतु विश्व भर में "मरुस्थलीकरण एवं सूखा रोकथाम दिवस" मनाया जाता है। वर्ष 2023 के लिए "Her Land Her Rights: Advancing Gender Equality and Land Restoration Goals"थीम रखी गई है।

सूखे के कारण:

1. **मौसम संबंधी सूखा:** जब किसी क्षेत्र में एक विशेष अवधि के लिए बारिश में कमी आती है – यह कुछ दिनों, महीनों, मौसम या वर्ष के लिए हो सकता है – यह मौसम संबंधी सूखा से प्रभावित होता है। भारत में एक क्षेत्र को मौसम संबंधी सूखा से प्रभावित तब माना जाता है जब वार्षिक वर्षा औसत बारिश से 75% कम होती है।
2. **हाइड्रोलॉजिकल सूखा:** यह मूल रूप से पानी में कमी के साथ जुड़ा हुआ है। हाइड्रोलॉजिकल सूखा अक्सर दो लगातार मौसम संबंधी सूखा का परिणाम होता है। ये दो श्रेणियों में विभाजित हैं:
   - सतह जल सूखा • भूजल सूखा
3. **मृदा की नमी का सूखा:** जैसा कि नाम से पता चलता है इस स्थिति में अपर्याप्त मिट्टी की नमी शामिल है जो कि फसलों की वृद्धि को बाधित करती है। यह मौसम संबंधी सूखा का नतीजा है क्योंकि इससे मिट्टी में पानी की आपूर्ति कम हो जाती है और वाष्पीकरण के कारण अधिक पानी का नुकसान होता है।
4. **कृषि सूखा:** जब मौसम संबंधी या हाइड्रोलॉजिकल सूखा एक क्षेत्र में फसल उपज पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तो इसे कृषि सूखा से प्रभावित माना जाता है।
5. **अकाल:** यह सबसे गंभीर सूखा की स्थिति है। ऐसे क्षेत्रों में लोग भोजन तक पहुंच नहीं पाते हैं और बड़े पैमाने पर भुखमरी और तबाही होती है। सरकार को ऐसी स्थिति में हस्तक्षेप करने की ज़रूरत है और अन्य स्थानों से इन जगहों पर भोजन की आपूर्ति की जाती है। यदि भारत में सूखे की बात करें तो 1876 से 1878, 1899 से 1900, 1918 से 1919, 1965 से 1967, 2000 से 2003 और 2015 से 2018 के बीच गंभीर सूखा पड़ा था| यदि भारतीय अर्थव्यवस्था पर सूखे के पड़ने वाले प्रभाव को देखें तो हर वर्ष जीडीपी के करीब 5 फीसदी हिस्से को नुकसान पहुंचा रहा है| हालांकि खाद्य उत्पादों की कीमतों में होने वाली वृद्धि, जल संकट और अन्य प्रभावों का मूल्यांकन करें तो यह नुकसान इससे कहीं ज्यादा बैठेगा|
6. **सामाजिक:** आर्थिक सूखा:-यह स्थिति तब होती है जब फसल की विफलता और सामाजिक सुरक्षा के कारण भोजन की उपलब्धता और आय में कमी आती है।

आँकड़े: जल शक्ति मंत्रालय के अनुसार, देश का लगभग 68 प्रतिशत हिस्सा अलग-अलग स्तरों पर सूखे से ग्रस्त है। मंत्रालय के आंकड़े बताते हैं कि भारत के 35

प्रतिशत क्षेत्रों में 750 मिलीमीटर से 1125 मिलीमीटर तक वर्षा होती है। जबकि 33 प्रतिशत क्षेत्रों में 750 मिलीमीटर से भी कम वर्षा होती है, ये क्षेत्र ही सूखे से ज्यादा प्रभावित रहते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार, जब किसी क्षेत्र में होने वाली वर्षा सामान्य स्तर से 26 प्रतिशत कम होती है तो वह क्षेत्र सूखे से ग्रस्त माना जाता है। सूखे के दो स्तर होते हैं, एक सामान्य सूखा और दूसरा गंभीर सूखा। जब किसी क्षेत्र में वर्षा की कमी 26 से 50 प्रतिशत के बीच होती है तो उसे सामान्य सूखा माना जाता है, लेकिन अगर वर्षा की कमी 50 प्रतिशत से अधिक हो जाती है तो इसे गंभीर सूखे की श्रेणी में रखा जाता है।भारत में सूखे से सबसे अधिक प्रभावित राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक और मध्य प्रदेश हैं। इसके अलावा गुजरात, उत्तर प्रदेश का कुछ क्षेत्र, झारखंड और ओडिशा का आंतरिक हिस्सा तथा तमिलनाडु का दक्षिणी भाग भी इससे प्रभावित रहता है। भारत में सूखे का मुख्य कारण मानसून के दौरान कम वर्षा का होना है।

1899-1900 का भारतीय अकाल पश्चिमी और मध्य भारत पर 1899 में गर्मियों के मानसून की विफलता के साथ शुरू हुआ और अगले वर्ष के दौरान, इसने 476,000 वर्ग मील (1,230,000 कि०मी2) क्षेत्र और 5.95 करोड़ आबादी को प्रभावित किया । [1] अकाल मध्य प्रांत और बरार, बॉम्बे प्रेसीडेंसी, अजमेर-मेरवाड़ा के मामूली प्रांत और पंजाब के हिसार जिले में तीव्र था; इसने राजपूताना एजेंसी, सेंट्रल इंडिया एजेंसी, हैदराबाद और काठियावाड़ एजेंसी की रियासतों में भी भारी तबाही मचाई । इसके अलावा, बंगाल प्रेसीडेंसी के छोटे क्षेत्र, मद्रास प्रेसीडेंसी और उत्तर-पश्चिमी प्रांत अकाल से बुरी तरह पीड़ित थे।

सूखे से बचाव हेतु कदम: सूखे से बचने के उपाय अथवा सुझाव इस प्रकार हैं -

1. जल का बहुत बड़ा हिस्सा सिंचाई के काम आता है। सिंचाई तंत्र मे जल का उचित प्रबंधन करके जल मे की गयी बचत सूखे मे राहत दे सकती है।
2. नहरो द्वारा हमे अति सिंचाई से बचना चाहिए ताकि जल-स्तर के नीचे होने और मिट्टी मे लवण व क्षार बढ़ने की समस्या पैदा न हो।
3. देश की प्रमुख नदियों के बेसिन आपस मे जोड़कर नदियों का एक ग्रिड बना दिया जाये ताकि शुष्क तथा अनावृष्टि वाले क्षेत्रों मे जल की आपूर्ति होती रहे।
4. शुष्क व अर्ध-शुष्क प्रदेशों मे शुष्क कृषि-प्रणाली (Dry Land Farming System) तथा बौछारी सिंचाई (Sprinkler Irrigation), टपकन सिंचाई (Dripor Trickle Irrigation) की व्यवस्था सूखे का कारगर मुकाबला कर सकते है।
5. नदियों के ऊपरी अपवाह-क्षेत्र (Catchment Area) पर छोटे-छोटे बाँध बनाये जायें ताकि पानी व्यर्थ न बह जाये। लघु जल संभर (Micro Water Shed) के आधार पर जल और मृदा दोनों का संरक्षण सूखे के प्रबंधन के लिये जरूरी है। जल संभर ही एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा सूखा तथा उससे जुड़ी समस्याओं जैसे निम्न कृषि-उत्पादन तथा पर्यावरण ह्रास आदि को सुलझाया जा सकता है।
6. सूखे की समस्या का निदान कटक से घाटी (Ridge to Valley) तक अर्थात् संपूर्ण नदी बेसिन के उपचार मे निहित है ताकि जल, मिट्टी और जीव का सहजीवी विकास हो सके। सूखे का इलाज टुकड़ो मे (Patch work) करने से नही होगा।
7. वृक्षों की अविचारित कटाई को रोककर सूखा-सम्भावित क्षेत्रों मे सामाजिक वानिकी तथा फार्म वानिकी जैसे कार्यक्रमों जिनसे चारे व ईंधन की उपलब्धता बढ़ी है, को प्रोत्साहित किया जाना जरूरी है। विस्तृत क्षेत्र पर फैला स्थायी हरित है, को प्रोत्साहित किया जाना जरूरी है। विस्तृत क्षेत्र पर फैला स्थायी हरित आवरण ही बार-बार पड़ रहे सूखे का इलाज है।
8. टिकाऊ जल-भण्डारण के प्राकृतिक साधनों जैसे मृदा-परिच्छेदिका वृक्ष और जलभृत को हम भूलतूमे जा रहे है।
9. 'जल जहां गिरे उसे कब्जा लो' की एक प्राचीन अवधारणा को देश के वृष्टि छाया प्रदेशों मे एक नये सिरे से इस्तेमाल मे लाया जा रहा है। इसमे घरों की छतों से वर्षा का जल मकानों के नीचे भूमिगत टंकियों मे इकट्ठा किया जाता है। इसमे कुयें भी भर जाते है।
10. सूखे का पूर्वानुमान प्रसारित करके भी सुखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है। ऐसे मे किसान कम जल माँगने वाली फसलों का चयन कर सकते हैं।

निष्कर्ष: सूखा जैसी समस्या वर्तमान समय में स्थायी बन गई है जल की एक एक बूंद कितनी कीमती है इसके महत्व को हम सभी को अपनी भावी पीढ़ी को समझना होगा। विश्व बंधुत्व की भावना के साथ चलते हुए एवं पर्यावरणीय संतुलन एवं जन जागरूकता के द्वारा सूखे जैसी जटिल समस्या से निपटा जा सकता है।

पोषक आहारः मिलेट्स

डॉ. ननिता बेरी, सुश्री रिंकी पटैरिया
एवं श्री सुमित सिंह ठाकुर
भा.वा.अ.शि.प.-उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

देश में प्राचीन और पौष्टिक अनाज मिलेट्स के प्रति जागरूकता बढ़ाने एवं इसके संरक्षण हेतु भागीदारी की भावना पैदा करने के लिये कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष घोषित किया गया है, एवं इसके तहत विभिन्न कार्यक्रमों की श्रृंखला में जैसे-इंडिया वेल्थ, मिलेट्स फॉर हेल्थ, मिलेट स्टार्टअप इनोवेशन चेलेंज, माइटी मिलेट्स क्विज, प्रतीक चिन्ह और स्लोगन प्रतियोगिता आदि का आयोजन रखा गया है।

मिलेट्स में दो तरह के अनाज आते हैं, एक मोटा अनाज-ज्वार, बाजरा, मक्का और दूसरा छोटे दाने वाले अनाज - कोदो कुटकी जो पोएसी परिवार के सदस्य हैं। बाजरा, मिलेट में सबसे ज्यादा लोकप्रिय है।

उन्नत देशों में मोटे अनाज का मुख्य रूप से पशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता है, जबकि विकासशील देशों में मोटे अनाज का 68-98 प्रतिशत मानव उपभोग के लिए उपयोग किया जाता है। स्वाद और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं के आधार पर इन्हें हमारे आहार में कई उपयोग के लिए रखा जाता है।

यह मुख्य रूप से आदिवासियों की थाली में प्रमुख भोजन के रूप में होता था लेकिन आज के परिवेश में इनका उपयोग स्वस्थ रहने के लिए भी किया जाता है। आदिवासी वनों में ही निवास करते हैं एवं अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए, जंगलों में पाए जाने वाले खाद्य पदार्थों पर निर्भर रहकर अपनी आजीविका वहन करते है।

मध्यप्रदेश पूरे भारत में सर्वाधिक जनजातीय जनसंख्या वाला राज्य है तथा यहाँ कुल जनसंख्या का लगभग 21.1 प्रतिशत भाग जनजातीय है। इसमें सहरिया, बेगा, भारिया जैसी अत्यंत पिछड़ी जनजाति तथा गोंड, पनिका, कोल, पारधी, भील, कोरकू, अगरिया, बंजारा जैसी 47 जनजातियों का निवास स्थल मध्यप्रदेश है एवं ये समूह अधिकतर 50 प्रतिशत भोजन के लिए मिलेट्स पर आश्रित होते हैं।

वर्तमान में विश्व में बाजरा उगाने वाले देश उत्तरी चीन, भारत, अफ्रीका और दक्षिणी रूस में उत्पादन किया जाता है, भारत में बाजरा मुख्य रूप से राजस्थान, पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, आंध्रप्रदेश और पंजाब में होता है तथा मध्यप्रदेश मे बाजरा का उत्पादन मुख्यत भिंड मुरैना ग्वालियर और श्योपुर जिलों में होता हैं।

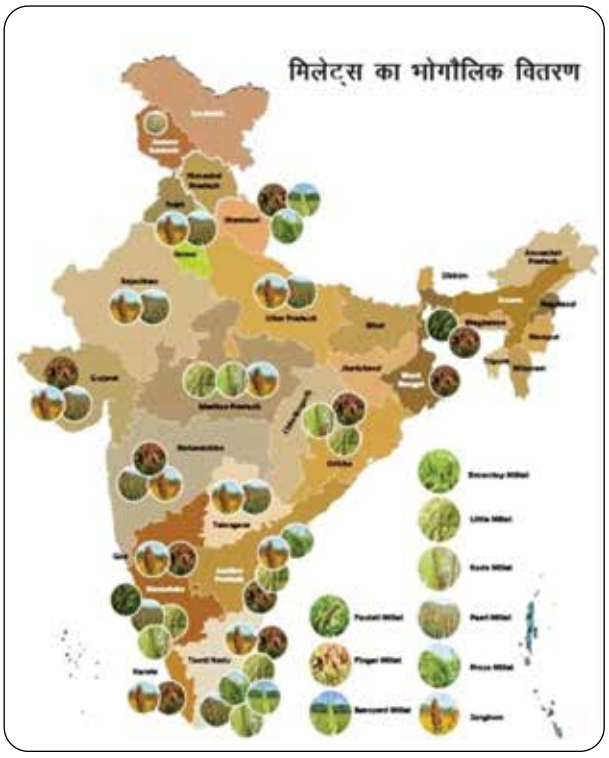

मिलेट्स में उपलब्ध पोषक तत्त्व

क्र.	पोषक तत्व	प्रतिशत
1.	ऊर्जा	378 कैलोरी
2.	कार्बोहाइड्रेट	75 ग्राम
3.	वसा	6.3 ग्राम
4.	प्रोटीन	
5.	विटामिन	7.7 मिलीग्राम
5.	खनिज लवण (कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, मेंगनीज, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सोडियम और ज़िंक)	613 मिलीग्राम।

ये एंटीऑक्सिडेंट, इम्यून मॉड्यूलेटर, डिटॉक्सिफाइंग एजेंट आदि के रूप में कार्य करते हैं और इसलिए उम्र से संबंधित अपक्षयी रोगों जैसे हृदय रोग, मधुमेह, कैंसर, और यह इसके अलावा निम्न बीमारियों के रोकथाम के लिए लाभदायक है -

- ब्लड प्रेशर को नियंत्रित करता है।
- मधुमेह को नियंत्रित करता है।
- शरीर के वजन को बनाए रखता है, वजन कम करता है।
- हृदय रोग के खतरे को रोकता है।
- ऊर्जा का स्त्रोत है।
- कोलेस्ट्रॉल कम करने में मदद करता है।

माइनर मिलेट्स:

1. फॉक्सटेल बाजरा (ककुम):
   - इसमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है।
   - चावल की तुलना में इसमें प्रोटीन की मात्रा दोगुनी होती है।
   - इसमें कॉपर और आयरन जैसे मिनरल्स होते हैं।
   - यह बहुत सारे पोषक तत्व प्रदान करता है, इसमें एक मीठा पौष्टिक स्वाद होता है और इसे सबसे सुपाच्य और गैर-एलर्जी अनाज में से एक माना जाता है।

फॉक्सटेल मिलेट - कंगनी

2. कोदो बाजरा (कोडोन):
   - इसमें उच्च प्रोटीन सामग्री (11 प्रतिशत), कम वसा (4.2 प्रतिशत) और बहुत अधिक फाइबर सामग्री (14.3 प्रतिशत) है। कोदो बाजरा विटामिन बी विशेष रूप से नियासिन, पाइरिडोक्सिन और फोलिक एसिड के साथ-साथ कैल्शियम, लोहा, पोटेशियम, मैग्नीशियम और जस्ता जैसे खनिजों से भरपूर है।
   - इसमें उच्च मात्रा में लेसिथिन होता है, और यह तंत्रिका तंत्र को मजबूत करने के लिए एक उत्कृष्ट है।
   - बरनी बाजरा (सनवाद्ध यह क्रूड फाइबर और आयरन का सबसे समृद्ध स्रोत है।
   - इसके अनाज में अन्य कार्यात्मक घटक होते हैं जैसे, गामा एमिनो ब्यूटिरिक एसिड (जीएबीए) और बीटा-ग्लूकन, एंटीऑक्सिडेंट के रूप में, और रक्त लिपिड स्तर को कम करने में उपयोग किया जाता है।

कोदो बाजरा-पॉसपालम

3. छोटा बाजरा (कुटकी/शवन)
   - यह अन्य बाजरा से छोटा होता है।
   - इसमें आयरन की मात्रा अधिक होती है।
   - इसमें उच्च एंटीऑक्सीडेंट गतिविधियां हैं।
   - इसमें लगभग 38 प्रतिशत आहार फाइबर होता है।
4. प्रोसो बाजरा (चेन्ना/बर्री): इसमें सबसे अधिक मात्रा में प्रोटीन (12.5 ग्राम) होता है।
   - प्रोसो मिलेट के स्वास्थ्य लाभ इसके अनूठे गुणों से मिलते हैं। इसमें महत्वपूर्ण मात्रा में कार्बाहाइड्रेट और फैटी एसिड होते हैं।
   - यह मसालों और नट्स जैसे अन्य पारंपरिक स्रोतों की तुलना में मैंगनीज का सस्ता स्रोत है।

- इसमें उच्च मात्रा में कैल्शियम होता है, जो हड्डियों के विकास और रखरखाव के लिए आवश्यक है।
- यह कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करता है, और दिल की बीमारियों के खतरे को भी कम करता है।

पोरसा मिल्लेट्स

रागी मिल्लेट्स

पर्ल मिलेट-बाजरा

पेन्नीसेतुम-गलुक्म

आदिवासियों के निवास स्थल के आस पास की भूमि बंजर या उपजाऊ भूमि होती है, जहाँ पर संसाधनों के अभाव के कारण मुख्य खाद्यान (गेहूँ, चावल) आदि का उत्पादन संभव नहीं होता है जिसके कारण उन स्थानों पर मिलेट्स का उत्पादन होता है, जो कि पहले केवल खाद्यान आपूर्ति के लिए होता था लेकिन वर्तमान में स्वास्थ्य वर्धक होने के कारण इसके उपयोग एवं उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि होना इसके संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ है।

अतः मिल्लेट्स की खेती एवं इसके संरक्षण के लिए एक पोषण पखवाड़ा मनाया गया जिसके अंतर्गत आदिवासी बहुल क्षेत्र में संस्थान द्वारा एक दिवसीय जागरूकता अभियान चलाया गया एवं कोदो कुटकी के बीज किसानो को वितरित किये गए।

प्रसन्न रहना सीखें

श्रीमती रोशनी चौहान

भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

आजकल की जिन्दगी में भागदौड़ में इंसान इतना व्यस्त हो गया कि खुश रहना ही भूल गया है। अपनी पसंद नापसंद इच्छा का ध्यान रखते हुए अपना कर्म अपनी जिम्मेदारी को पूरा करते रहने से इंसान खुश रह सकता है। परिस्थितियां हमेशा एक सी नहीं रहती और उसी के अनुसार इंसान खुशी या दुःखी रहता है। जिस भी समय, स्थान और काल में जिस भी परिस्थिति में हों उसी के अनुसार मन से वह कार्य करें जो आप के स्वंय के द्वारा उस स्थिति में अपेक्षित हो। आपकी सबसे ईमानदारी कोशिशों के बावजूद भी यह आवश्यक नहीं है कि उसका परिणाम भी आपकी इच्छाओं के अनुसार ही हो।

जीवन का अनुभव भी हमें सीखा सकता है कि जीवन में सदैव खुश रहना चाहिए। खुश रहने के साथ साथ जीवन की प्रत्येक गतिविधि में रूचि भी उत्पन्न करने का प्रयास होना चाहिए।

खुश रहना जरूरी इसलिए है कि - खुश रहने से हमारे शरीर में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो खुश रहने से हमारे शरीर को स्वस्थ रहने में सहायक होते है जैसे की हंसने से भी हमारा शरीर स्वस्थ रहता है। आजकल बड़े शहर हों या छोटे शहर, हंसने हंसाने वाले क्लब व संगठन हैं। सुबह के समय हर उम्र के लोग जगह जगह पार्क में घुमते नजर आते हैं तथा सुबह की ताजी हवा का आन्नद लेते हुए ठहाके लगाते हंसते नजर आते है।

जिन्दगी में एक सीख मिली कि अपने में खुश रहना व किसी से कोई उम्मीद न करना जिसेको खुश रहना आ गया उसको जिंदगी जीना आ गया। अपने आस पास देखे तो बच्चे ही खुश दिखेंगे इसलिए बच्चे ही अपनी जिन्दगी जीते है वाकी सब तो बस इसका बोझ ढोते हैं।

अगर तारीफ करने से कोई खुश होता है, तो क्यों न तारीफ की जाये इस तारीफ से शब्द से खुशियां फैलायी जा सके। हंसना जिन्दगी में खुश रहना हमें हमारे पूर्वजों ने सिखाया। स्माईल जिन्दगी हमें हर हाल में खुश रहना सिखाती है।

खुश रहने के तरीके अलग अलग हैं, जैसे कि लोगों के पास कम व दुआओं में ज्यादा रहना सीखो। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि फूल बनकर खिलो, जीत कर खुश हुए तो क्या, हार कर खुश होना बड़ी बात है हमारे पूर्वजों ने भी हमें खुश रहने का मंत्र सिखाया।

सदा खुश रहने का मंत्र है: प्रसन्न चेतसो हयाशु बुद्विः पर्यवतिष्ठते।

स्माइलः सबसे अधिक जरूरी है आपका मुस्कुराना। परिस्थिति चाहे जैसी हो चेहरे पर एक मुस्कान हर मुश्किल को आसान बना देती है।

प्रेरणाः जिस व्यक्ति का काम अच्छा लगे उससे प्रेरणा लें। अखबार के अलावा किताबें पढ़ने की आदत डालें। हर व्यक्ति की अच्छी बातें सीखने और आत्मसात करने का प्रयास करें।

दोस्तः अच्छे दोस्त बनाये जो आपको हंसायें, आपकी सहायता करें, व आपको नैतिक सर्मथन करें। जिनसे आप अपनी कोई भी समस्या सांझा कर सकते है।

सकारात्मक सोच के लोगों के साथ रहेःआपके आस-पास के लोग सकारात्मक सोच वाले हों यह सबसे ज्यादा जरूरी है।

दयालुताः इस की शुरूआत भी आप अपने आप से करें। खुद के प्रति दयालु रहें आपकी सोच सकारात्मक हो जाएगी। फिर हर किसी के प्रति उदार भाव रखें

विश्वासः विश्वास करें और विश्वास जीतें यही खुश रहने का मूल मंत्र है आत्म विश्वास से इसकी शुरूआत होती है।

ध्यान बांटे: जो बातें आपको ज्यादा परेशान कर रही है उससे अपना घ्यान हटा कर उन बातों की तरफ कीजिए जो आपको अच्छी लगती हैं।

सकारात्मक रहोः सकारात्मक सोच रखो। नकारात्मक सोच सेहत व खुशियों को कम करती है। खुश रहने के लिए हमेशा सकारात्मक सोचना चाहिए, अपने जीवन में

एक लक्ष्य बनाना चाहिए नकारात्मक चीजों से खुद को दूर रखना चाहिए जीवन में और भी कई सारी बातों से हम अपने के खुश रख सकते है।

संगीत सुनेः अपने पसन्द का संगीत सुने हमेशा खुशी और सूकून देने वाला होता है।

योगः भारत में आधुनिक योग का विकास लगभग 17वीं शताब्दी के आस पास माना जाता है। योग को जीवन का हिस्सा बनायें, योग व प्राणायाम से शरीर को स्वस्थ व निरोग बनायें। योग नियमित रक्तचाप और हृदय गति को नियंत्रित रखने में मदद करता है। शरीर को आराम मिलता है। आत्मविश्वास में सुघार होता है तनाव की समस्या कम होती है। योग से मन की एकाग्रता में सुधार होता है। योग व्यक्ति को पूरे दिन फिट रखता है। रोजाना योग करने से मानसिक, शारीरिक लाभ होते हैं।

ऐसा माना जाता है कि योग की उत्पति लगभग 5000 वर्ष पहले हुई थी आनन्दमय जीवन के लिए योग अपनायें। प्रत्येक वर्ष 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाते हैं। योग मन और विचारों को पवित्र व शुद्व करता है।

खुश रहने की कलाः खुश रहना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी है अपनी तुलना किसी से न करें, हर इंसान अपने आप में बेहतर होता है अपनी खासियत को समझना और उस पर गर्व करना।

मोबाइल का प्रयोग सीमित करें: बच्चों को मोबाइल से दूर रखें, अपने शौक को समय दें, अपने लिए समय निकालें, अपने पंसदीदा खेल, बागवानी का शौक हो या गुनगनाने का, आपको भावनात्मक तुष्टी का अहसास करवाता है।

रेशम उद्योग में रोजगार की व्यापक संभावनाएं

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
भा.वा.आ.शि.प. - उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

रेशम का इतिहास बहुत पुराना है। इसकी शुरूआत ईसा पूर्व 5 वीं शताब्दी में चीन से हुई। चीन ने इस उद्योग करीब 200 वर्षों तक छुपाकर रखा। धीरे-धीरे यह उद्योग कोरिया, जापान, भारत, पाकिस्तान और अरब देशों तक फैला। भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता में खुदाई से ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में चीन से व्यापार के प्रमाण मिले है। भारत में रेशम का चलन ईसा पश्चात 5 वीं शदी में शुरू हुआ। मुगल काल में भी भारत में इसका प्रचलन बढ़ा।

रेशम भारत के जीवन में रच बस गया है। हजारों वर्षों से यह भारतीय संस्कृति और परम्परा का अभिन्न अंग बन गया है। कोई भी अनुष्ठान किसी न किसी रूप में रेशम के उपयोग के बिना पूरा नहीं होता है। रेशम उत्पादन और सिल्क रेशमी कपड़ा एक मुख्य उप क्षेत्र है जिसमें कपड़ा क्षेत्र आता है। रेशम उत्पादन कृषि आधारित कुटीर उद्योग है। रेशम उत्पादन का आशय बड़ी मात्रा में रेशम प्राप्त करने के लिए रेशम उत्पादक जीवों को पालन होता है। रेशम उत्पादन कृषि आधारित श्रम गहन उद्योग है।

आधुनिक भारत में वाराणसी, कोलकाता, गुवाहाटी, कांचीपुरम्, सूरत और अहमदाबाद रेशम के कपड़े के व्यापार के मुख्य केन्द्र हैं। इस समय रेशम की साड़ी और कुर्ते के कपड़े आदि का व्यवहारिक उत्पादन के केन्द्र वाराणसी और कांचीपुरम् है। हैंडलूम से बनने वाली 1 साड़ी में 2 माह लग जाते है। भारतीय कलाकार वाराणसी में कताई, बुनाई, रंगाई के साथ-साथ कपड़ों में सूरज, चांद, सितारे, नदियां, पेड़, फूल, पक्षी, बैल, घोड़े, शेर, हाथी, मोर, हंस, बाज आदि का रूपांकन करते हैं। रेशम की साड़ी में सोने, चांदी और जरी के धागे इस्तेमाल किये जाते है।

भारत में रेशम के धागे बनाने का काम 19 शताब्दी में शुरू हुआ। भारत में केरल, तमिलनाडु, असम, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश में रेशम के धागे और कोया का उत्पादन होता है। मध्य प्रदेश के विदिशा, होशांगाबाद, हरदा, बुरहानपुर में बड़े पैमाने पर रेशम के कोये का उत्पादन शुरू हो गया है। विदिशा में शहतूत से कोया, कोये से धागा और धागे से रेशम के कपड़े बनाने का काम व्यवहारिक रूप से पिछले 5 दशक से हो रहा है। विदिशा के सिरोंज में रेशम के धागे से कपड़े बनाने का कारखाना है। लाखों रेशा मिलकर रेशम बनता है।

रेशम उत्पादन के मामले में भारत का स्थान विश्व में दूसरा है, जो कुल वैश्विक उत्पादन में करीब 18 फीसदी का योगदान करता है लेकिन दुनिया में रेशम का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। साल 2010 में दुनिया भर में कुल 140051 टन कच्चे रेशम का उत्पादन हुआ और इसमें चीन की हिस्सेदारी करीब 82 फीसदी रही। इसके बाद भारत का स्थान रहा, जो वैश्विक मांग का करीब 15 फीसदी पूरा करता है। दिलचस्प रूप से भारत रेशम का सबसे बड़ा उपभोक्ता भी है, जहां 27,000 टन रेशम की खपत होती है।

भारत में मलबरी रेशम उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु और जम्मू-कश्मीर। कुल सिल्क उत्पादन में इन राज्यों की हिस्सेदारी कुल मिलाकर 92 फीसदी है। साल 2010-11 में देश में 1,63,060 टन कच्चे रेशम का उत्पादन हुआ था। यही वजह है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों में सेरिकल्चर के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं, जहां इसके विभिन्न पहलुओं से रूबरू होकर छात्र न सिर्फ रेशम उत्पादन में अपना योगदान दे सकते हैं, बल्कि अपने कैरियर को भी एक बेहतरीन सिल्की टच दे सकते हैं।

रेशम उत्पाद में भारत दूसरे नंबर पर आता है। रेशम के जितने भी प्रकार हैं, उन सभी का उत्पादन किसी न किसी भारतीय इलाके में होता ही है। भारतीय बाजार में इसकी खपत भी काफी है। विशेषज्ञों के मुताबिक, रेशम उद्योग के विस्तार को देखते हुए इसमें रोजगार की काफी संभावनाएं हैं और आने वाले दिनों में इसका कारोबार और फलेगा-फूलेगा। फैशन उद्योग के काफी

करीब होने के कारण भी इसकी मांग में शायद ही कभी कमी आए। रेशम और उससे बनने वाले उत्पाद अपने ऊँचे मूल्य के कारण अपने निर्माताओं के लिए आय के अच्छे स्रोत होते हैं।

रेशम उत्पादनः रेशम का कीड़ा अंडा देता हैं। अंडे से लार्वा बनाता है। लार्वे से कोकून बनता है। कोकून से कोया बनता है और कोये से धागा व धागे से कपड़ा बनता है। इसकी प्रक्रिया बहुत जटिल और लंबी है। इसलिये इसका कपड़ा बहुत महंगा मिलता है। रेशम के कीड़े शहतूत की ताजा पत्ती खाकर कोया बनाते है। 30 हजार कीड़े मिलकर 10 क्विंटल शहतूत की पत्ती खाकर 6 किलोग्राम कोया पैदा करते है। रेशम के कीड़े अपने ऊपर एक खोल बना लेते है और उसके ऊपर धागा बुनते है। यह धागा 600 से 900 मीटर लंबा होता है।

व्यापारः रेशम का व्यापार पूरी दुनिया में होता है। इसका मुख्य केन्द्र आज भी चीन है। हर साल चीन और जापान विश्व के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत भाग रेशम बनाते है। रेशम की साड़ी और कपड़े पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हैं। भारत भी रेशम निर्यात का प्रमुख केन्द्र है। रेशम के कपड़े का कुल निर्यात का 15 प्रतिशत भारत द्वारा किया जाता है। यह एक लाभदायक रोजगार है। रेशम उत्पाद के लिए ऐसी सिंचित भूमि होना आवश्यक है जिस पर शहतूत के पौधों को रोपती किया जा सके। एक उद्यमी के लिए लगभग डेढ़ एकड़ रकबा काफी है।

शहतूत के पौधों की खासियत यही है कि इन्हें कहीं भी लगाया जा सकता है। इन पौधों को न तो किसी विशेष किस्म की मिट्टी की जरूरत होती है न ही कुछ विशेष आबोहवा की। इस पेड़ की पत्तियाँ रेशम के कीड़ों का मुख्य भोजन होती है। शहतूत में यह पत्तियाँ एक निश्चित अनुपात में निरंतर उगती रहती है अतः कीड़ों के लिए भोजन की कोई समस्या नहीं रहती है।

रेशम उत्पादनः औसतन 1000 कि. ग्रा. फ्रेश कोकून सुखाने पर 400 कि. ग्रा. के लगभग रह जाता है जिसमें से 385 कि. ग्रा. में प्यूपा 230 कि. ग्रा. रहता है और शेष 155 कि. ग्रा. शेल रहता है। इस 230 कि.ग्रा. प्यूपा में से लगभग 120 कि. ग्रा. कच्चा रेशम तथा 35 कि.ग्रा. सिल्क वेस्ट प्राप्त होता है।

इस कच्चे रेशम से रेशम को चरखे/तकली द्वारा रोल किया जाता है जिसे रीलिंग कहते हैं। रेशम तभी बिक्री योग्य होता है, जब उसको कपड़े के रूप में बुन लिया जाए। बुनाई हेतु कई साधन आजकल प्रचलन में है फिर भी हथकरघा पर बने हुए रेशम का अच्छा बाजार मूल्य मिलता है। कुछ हथकरघा जैसे सेवाग्राम करघा, नेपाली करघा, चितरंजन करघा आदि प्रमुखता से उपयोग किये जाते हैं। हथकरघा आदि के लिए उद्यमी अपने क्षेत्र के प्रबंधक खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड से परामर्श ले सकते हैं।

रेशम उत्पादन एक अत्यन्त गहन श्रम क्षेत्र है, जिसमें कृषि (रेशम उत्पादन) और उद्योगों के क्रिया-कलाप शामिल होते हैं। भारत का रेशम कच्चा उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है। इस स्थान के साथ-साथ इसकी अपार रोजगार क्षमता, जो रेशम पालन और सिल्क को भारतीय कपड़े के नक्शे में अपरिहार्य बनाता है।

रेशम का मूल्य बहुत अधिक है परन्तु इसकी उत्पादन की मात्रा कम है जो विश्व के कुल कपड़ा उत्पादन का केवल 0.2 प्रतिशत है। यह आर्थिक महत्व का मूल्यवर्धित उत्पाद प्रदान करता है।

मूंगा रेशम के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। यह कृषि क्षेत्र में एकमात्र नकदी फसल है जो 30 दिनों के भीतर प्रतिफल प्रदान करता है। रेशम उत्पादन महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया-कलाप के रूप में उभरा है। यह देश के अनेकानेक भागों में लोकप्रिय होता जा रहा है क्योंकि इसकी परिपक्वन अवधि छोटी होती है, संसाधनों का तुरंत पुनः चक्रण होता है। यह सभी प्रकार के किसानों के लिए उपयुक्त होता है विशेषतया सीमांत और छोटे जमीन धारकों के लिए चूंकि यह आय बढ़ाने के लिए समृद्ध अवसर प्रदान करता है और साल भर के लिए स्वयं परिवार के लिए रोजगार का सृजन करता है।

हिमालयी औषधीय जड़ी-बूटियाँ: कुठ और पुष्करमूल

श्री दुष्यन्त कुमार एवं श्रीमती शिल्पा
भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

भारतीय हिमालयी क्षेत्र का सम्पूर्ण भाग जैव विविधता समृद्ध क्षेत्र के अंतर्गत आता है। यहाँ पर जीवों और पौधों की विभिन्न स्थानिक प्रजातियाँ विद्यमान है। यहाँ मिलने वाली वनस्पतियाँ में औषधीय महत्व की अनेकों प्रकार की जड़ी- बूटियाँ भी शामिल है। चिरकाल से स्थानीय निवासियों द्वारा इन जड़ी-बूटियों का पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में इस्तेमाल होता रहा है और आधुनिक विज्ञान ने भी शोधो के आधार पर, हिमालय क्षेत्र की विविध पौध प्रजातियों के औषधीय महत्व की प्रामाणिकता को सिद्ध किया है। अधिकांश औषधीय प्रजातियाँ हिमालय के वनों में अपने प्राकृतिक आवासों में पायी जाती है, और इनमें से कई प्रजातियों की स्थानीय निवासियों द्वारा खेती भी की जाती है। कुठ और पुष्करमूल (मानु) भी उच्च हिमालय क्षेत्रों के शुष्क एवं समशीतोष्ण वातावरण में पायी जाने वाली दो ऐसी जड़ी बूटियाँ है, जिनमें बहुत सारे औषधीय गुण पाये जाते है और किसानो द्वारा इन पौधों को अन्य फसलों के साथ – साथ उगाया जाता है। ये दोनों बहुवर्षीय शकीय पौध प्रजातियाँ है, जो एक ही वानस्पतिक परिवार अर्थात ऐस्टेरसी से संबंध रखती है। वैज्ञानिक भाषा में, कुठ को *सोसुरिया कोस्टस* और पुष्करमूल (मानु) को *इनुला रेसिमोसा* के नाम से जाना जाता है।

कुठ का पौधा

पुष्करमूल का पौधा

वानस्पतिक परिचय एवं भौगोलिक वितरण: कुठ ठंडे वातावरण में उगने वाली एक जड़ी बूटी है, जो उत्तरी-पश्चिमी हिमालय में केंद्र शासित प्रदेश जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश के सीमित भागो में 2200 मीटर से 3200 मीटर तक की ऊंचाई वाले स्थानों पर पायी जाती है। हिमाचल प्रदेश में कुठ पांगी- भरमौर, बड़ा भंगाल, लाहौल और किन्नौर के कई स्थानों पर प्राकृतिक रूप से मिलता है। कुठ के पौधे की ऊंचाई लगभग 2 मीटर तक होती है। तने के आधार पर,पत्तियाँ चौड़ी और बड़े आकार की हाती है, जबकि मध्य और ऊपरी तने की पत्तियाँ छोटी होती हैं। इस पौधे के फूल नीले-बैंगनी रंग के होते हैं और अगस्त से सितंबर महीनो के मध्य इसमें पुष्पन व बीज बनने की प्रक्रिया पूरी होती है । कुठ की जड़ें 2 से.मी. तक मोटी और 30 से०मी० भी अधिक लंबी हो सकती है। इसी प्रकार से पुष्करमूल भी उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में 2000-3500 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अफगानिस्तान से नेपाल तक पाया जाता है। हिमाचल में पुष्करमूल कुल्लू, लाहौल–स्पीति और किन्नौर में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। पुष्करमूल के पौधे की ऊंचाई 1.5 से 2 मीटर तक होती है। इसका तना मजबूत तथा झुर्रीदार होता है। नीचे की पत्तियाँ चौड़ी, खुरदरी, डंठल वाली और दांतेदार होती हैं। पत्तियां 18-45 से.मी. लंबी अण्डाकार या चाकू के आकार की होती है। इस पौधे में पीले रंग के फूल, पुष्पपुंज के रूप मे व्यवस्थित होते है और यह देखने में सूरजमुखी के फूल के तरह लगते है। पुष्करमूल में जुलाई-सितंबर के मध्य में पुष्प लगते है।

कुठ और पुष्कर मूल की जड़ें

औषधीय अभिलक्षण: वास्तव में, कुठ और पुष्करमूल दोनों ही जड़ी- बूटियाँ अनेकों औषधीय गुणों का भंडार है तथा विभिन्न प्रकार की चिकित्सा प्रणालियों जैसे:- तिब्बती, यूनानी, आयुर्वेद इत्यादि में इन पौधो का व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है। इन दोनों प्रजातियों में कई तरह के महत्वपूर्ण माध्यमिक मेटाबोलाइट्स और औषधीय अभिलक्षणों वाले जैविक सक्रिय यौगिक पाये जाते है मुख्य रूप से, कुठ और पुष्करमूल की जड़ों का इस्तेमाल कई प्रकार के रोगों के निदान में किया जाता है। कुठ की जड़ो में वाष्पशील तेल और विविध अल्कलॉइड पाये जाते है। इसकी जड़ या तो एकल रूप में या फिर अन्य दवाओं के साथ संयोजन में पेट दर्द, खांसी और सर्दी, मलेरिया, गठिया, उदरशूल, बुखार, अल्सर, पेचिश, त्वचा विकार के निवारण में प्रयोग में लायी जाती है। कुठ के तेल (कॉस्टस ऑयल) का प्रयोग कुष्ठ रोग के उपचारात्मक कार्यों में होने के करने इसे कुष्टा भी कहा जाता है। हिमालयी शीत मरुस्थलीय क्षेत्रों के गांवों में कुठ के सूखे पत्तों को तम्बाकू के रूप तथा ऊनी कपड़ों की सुरक्षा के लिए कीटनाशक के रूप में भी उपयोग में लाया जता है।

कुठ की तरह, पुष्करमूल भी एक अत्याधिक औषधीय महत्व वाली जड़ी बूटी है, जिसका प्रयोग कई प्रकार की दवाओं में किया जाता है। आयुर्वेद के महान आचार्य चरक ने हिचकी, स्वास रोग और सीने के दर्द के लिए इसे सर्वोत्तम औषधि कहा है। पुष्करमूल की जड़ो में, कफ़ौत्सारक, रोगाणुरोधक, कृमिनाशक और वातहारी गुण पाये जाते है। इसकी जड़े सूजनरोधी, पाचक, और टॉनिक का भी काम करती है। पुष्कर मूल में पाये जाने वाले यौगिकों का इस्तेमाल दमा,तपेदिक और यकृत की समस्याओं के उपचार में भी किया जाता है।

कृषिकरण एवं आर्थिकी पहलू : कुठ और पुष्कर मूल की खेती समशीतोष्ण उप-अल्पाइन क्षेत्रों में की जा सकती है। इन प्रजातियों के कृषिकरण के लिए जलवायु और मृदा की लगभग एक जैसी परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। प्राय: ये प्रजातियाँ महीन दोमट और नमी वाली मिट्टी में अच्छी प्रकार से उगाई जा सकती है। कुठ और पुष्करमूल का प्रवर्धन बीज तथा जड़ों द्वारा होता है। यद्यपि बीज के माध्यम से पौधे उगाना बेहतर होता है। पौधशाला में अच्छी तरह से नर्सरी बेड तैयार कर बीजों को फैला देना चाहिए। अंकुरण के पश्चात पौध को 30X 45 से. मी. एवं 45X 60 से. मी. की दूरी पर खेतों में रोपित किया जाता है। पौधे लगाने से पहले खेतों को अच्छी प्रकार जुताई कर जैविक खाद या फार्मयार्ड खाद का प्रयोग करना उपयोगी होता है। सामान्य तौर पर 3 वर्षों के अंतराल के बाद फसल परिपक्व जड़ वाले कंद के पूर्ण रूप में तैयार हो जाती है। जड़ों को जमीन से खोदने के उपरांत पानी से अच्छी प्रकार से साफ किया जाता है और सुखाया जाता है। भूमि के एक हेक्टेयर हिस्से से लगभग अढ़ाई से तीन क्विंटल या इससे ज्यादा पैदावार प्राप्त की जा सकती है। व्यापारिक दृष्टिकोण से, कुठ एवं पुष्करमूल का 350 से 400 रुपये प्रतिकिलो के हिसाब से दाम मिल जाता है।

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर आयुर्वेदिक दावा कंपनियों द्वारा कुठ और पुष्करमूल का उपयोग कई उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। इस कारण से दोनों प्रजातियों की आयुर्वेदिक फार्मा उद्योग में बड़ी मांग है। बाजार में अधिक मांग और व्यापार के कारण इन प्रजातियों का हिमालयी क्षेत्र के वनो से अत्यधिक दोहन किया गया है। जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक वास स्थलों में, कुठ और पुष्करमूल की संख्या में बहुत कमी हुई है तथा कुदरती संसाधनो के संरक्षण से जुड़ी संस्थाओं और विशेषज्ञों ने इन पौधों को गंभीर रूप से संकटग्रस्त प्रजातियों का दर्जा दिया है। क्योंकि कुठ और पुष्करमूल (मानु) की फसल तैयार होने में तीन वर्ष तक का समय लग जाता है। स्वाभाविक तौर पर दीर्घकालीन फसलचक्र होने के कारण लोगों द्वारा भी बड़े पैमाने पर कुठ और पुष्करमूल की खेती नहीं की जाती है और इन्हें केवल भूमि के कुछ हिस्से में ही उगाया जाता है। इन मूल्यवान औषधीय जड़ी- बूटियों की उपयोगीता को देखते हुए प्राकृतिक वास स्थानो में इनके संरक्षण तथा खेती के लिए उन्नत, लाभप्रद और लोकप्रिय तकनीकों को विकसित करने की आवश्यकता है।

जंगल को बचाने वाला पेड़

सुश्री प्रिया नगराईक
भा.वा.अ.शि.प.-काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु

जीत पंजाब में रहने वाला एक छोटा लड़का था, जिसे प्रकृति से बहुत प्यार था। वह अपने गांव गर्मियों की छुट्टियों में गया था, जहां वह ऊँचे -ऊँचे पेड़ों पर चढ़ता वहां से उसे जंगल का सम्पूर्ण नजारा देखने को मिलता और यह दृश्य उससे आनंददायी लगता था। वह हरी-भरी प्रकृति के बीच में ख़ुशी और आनन्दित महसूस करता। एक दिन उसने कुछ गांव के लोगों को पेड़ों को काटते हुए देखा। इस दृश्य को देख जीत आश्चर्यचकित और व्याकुल हो गया। उसने सोचा की वे पेड़ों को क्यों काट रहे हैं और उनका क्या करेंगे। इसके बारे में जीत ने अपने पिता से पूछने का फ़ैसला किया।

जीत के पिता ने उसे बताया की पेड़ों से मिलने वाली काष्ठ कई कामों के लिए प्रयोग की जाती है, जैसे घर बनाना, फ़र्नीचर बनाना, ख़ाना पकाना, और बाजार में बेचना। उन्होंने कहा कि काष्ठ बहुत मूल्यवान है और इसकी खपत भी अधिक है। "लेकिन जंगल का क्या?" जीत ने पूछा। "क्या वह विलुप्त नहीं हो जाएगा। अगर हम पेड़ों को काटते रहें"? उसके पिता ने आहत होकर कहा, "हमारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है, हमें जीवन यापन के लिए काष्ठ की आवश्यकता है और जंगल हमारा एक मात्र काष्ठ का स्त्रोत है।" जीत उदास और परेशान रहने लगा। वह इसी विषय के बारे में सोच-विचार करता रहता कि जंगल को कैसे सुरक्षित किया जाये और काष्ठ भी प्राप्त हो।

ग्रीष्म ऋतु की छुटियाँ खत्म होने के बाद जीत स्कूल गया। स्कूल में उसने शिक्षक से सुना कि पंजाब के कुछ हिस्सों में एक नए प्रकार के पेड़ को लगाने की मुहीम चल रही है। यह पेड़ पॉपलर के नाम से प्रसिद्ध है। यह दूसरे पेड़ों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ता है और कई प्रकार की उपयोगी वस्तुएं बनाने के काम में लाया जा सकता है। जीत ने पॉपलर पेड़ के बारे में काफी कुछ सीखा । उसके शिक्षक ने उसे बताया कि पॉपलर दूसरी किस्मों के पेड़ो की काष्ठ की तुलना में इतना मजबूत और टिकाऊ नहीं होता। इसलिए इसके उपयोग से पहले कुछ संशोधन की ज़रूरत होती है। उन्होंने कहा कि काष्ठ -वैज्ञानिक पॉपलर को विभिन्न उद्देश्यों के लिए अधिक उपयुक्त बनाने के नए तरीकों का विकास कर रहे हैं जिससे की काष्ठ की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। और यह पारम्परिक काष्ठ का एक अच्छा विकल्प माना जाता है।

जीत ने जो कुछ भी शिक्षक से इस पेड़ के बारे में सीखा उससे वह हैरान हो गया। जिससे उसकी जंगल को सुरक्षित रखने की एक नयी उम्मीद जाग गई। वह इस बात को अपने पिता और गांव वालों के साथ साझा करना चाहता था। उसे लगा कि शायद वे पुराने पेड़ों को काटने की जगह पॉपलर को उगाने और इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित कर सकता है। जीत ने पॉपलर पेड़ की तस्वीरों और तथ्यों से भरे विज्ञापन-पत्र बनाये और इन विज्ञापन-पत्रों को गांव वालों के साथ साझा किया। जिसे देख और जीत के तर्कों - वितर्कों को सुन कर सभी गांववाले जगरूक हुए। उन्होंने कहा पॉपलर के बारे में पहले कभी सुना नहीं था। और यह पारम्परिक काष्ठ का एक अच्छा विकल्प लगता है। सभी गांव वाले पॉपलर के बीज को अपनी जमीन में बुआई करने के लिए सहमत हो गए। और उन्होंने प्रण लिया कि यदि वो कामयाब हो गए तो साथ के गांववालों को भी पॉपलर के पेड़ लगाने और इससे होने वाले लाभों से अवगत कराएँगे।

जीत बहुत खुश हुआ, उसने अपने पिता और गांववालों का धन्यवाद किया। उसे उम्मीद थी कि उसके विचारों और आपसी सहयोग से सभी गांव वाले अवश्य ही कामयाब होंगे और वे सब मिलकर जंगल को विलुप्त होने से बचा पाएंगे।

कुछ साल बाद, जीत के गांव में बहुत बदलाव आया। गांव के चारों ओर पॉपलर के बड़े - बड़े पेड़ तैयार हो गए थे। जो विभिन्न ज़रूरतों के लिए काष्ठ की एक स्थिर आपूर्ति प्रदान करते थे। गांव वालों ने पॉपलर का प्रयोग करना सीखा। ताकि, इसे अलग-अलग प्रयोजनों के लिए अधिक उपयुक्त बना सकें, जैसे फ़र्श, फर्नीचर, ख़िलौने, आदि।

गांव वालों ने जंगल के पेड़ों को काटना भी बंद कर दिया। उन्हें बढ़ने और फलने-फूलने के लिए छोड़ दिया। जंगल पहले से भी अधिक हरा-भरा और विस्तृत हो गया। जिस कारण यहाँ तरह - तरह के पशु -पक्षी, जीव-जंतु और पेड़-पोंधो की प्रजातियों का विकास हुआ। जिसे देख कर जीत प्रसन्न हुआ। गांववालों को जीत के द्वारा किये गए काम पर गर्व था। उसने अपने गांव को अधिक समृद्ध और सतत बनाने में मदद की। साथ ही पर्यावरण और जैव-विविधता की रक्षा भी की।

उसे अभी भी पेड़ों पर चढ़ना और ऊपर से दृश्य देखना पसंद था। लेकिन अब उसके पास पेड़ों में से चुनने का विकल्प थाः जंगल में पुराने पेड़ या गांव के चारों तरफ पॉपलर के पेड़। जीत उत्सुकता से मुस्कुराया और सोचा कि दोनों ही अपने-अपने तरीकों से सुंदर और मूल्यवान है।

जंगल का देख सर्वनाश, जीत को हुआ ये खेद
खूब कोशिशों के बाद मिला, जंगल को बचाने वाला पेड़।
वैज्ञानिको ने लिया खोज का एक संकल्प,
जिसे पॉपलर बना एक बेहतर विकल्प।
फिर भी कुछ आसान न थी जंगल को बचाने की राह।
पर ज़िद्दी था वो लड़का, मन में लिए एक चाह।
हर घर में वो गाता था पॉपलर के गुणगान,
इसी कर्म ने दिया था, जंगल को जीवनदान।
कुछ सालो में आया था गांव में एक बदलाव,
हर खेत और खलिहान में थी पॉपलर पेड़ की छाव।
इस बच्चे की सोच ने दिया नया आकार,
जंगल को बचाने का सपना हुआ साकार।

स्वस्थ जीवन संतुष्ट जीवन

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
भा.वा.अ.शि.प.-वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

बहुत से लोग स्वस्थ व तंदुरुस्त रहने के महत्व को कम आंकते हैं। जबकि अच्छी सेहत से बड़ा कोई धन नहीं है। शास्त्रों में कहा गया है कि स्वास्थ्य धन ही सर्वप्रमुख धन है। स्वस्थ और तंदरुस्त रहना हमारे दैनिक कार्यों को पूरा करने में मदद करता है। स्वस्थ रहने का अर्थ रोग रहित तन का होना ही नहीं, बल्कि तनावमुक्त मन का होना भी है। स्वास्थ्य एक व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बेहतरी को संदर्भित करता है। एक व्यक्ति को अच्छे स्वास्थ्य का आनंद लेते हुए तब कहा जाता है जब वह किसी भी शारीरिक बीमारियों, मानसिक तनाव से रहित होता है और अच्छे पारस्परिक संबंधों का मजा उठता है। शरीर और मन दोनों की स्वस्थता जीवन में सफलता के साथ आनंदमय जीवन जीने का सूत्र है। अच्छा मानसिक स्वास्थ्य हमें अच्छा महसूस कराने के साथ शारीरिक क्षमता और आत्मविश्वास प्रदान करता है।

अच्छे स्वास्थ्य की परिभाषा:

1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने किसी व्यक्ति की संपूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्थिति को स्वास्थ्य में शामिल किया है न कि केवल बीमारी का अभाव। 1980 में स्वास्थ्य की एक नई अवधारणा लाई गई। इसके तहत स्वास्थ्य को एक संसाधन के रूप में माना गया है। आज एक व्यक्ति को तब स्वस्थ माना जाता है जब वह अच्छा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और संज्ञानात्मक स्वास्थ्य का आनंद ले रहा है।

स्वास्थ्य उस स्थिति का नाम है जब एक व्यक्ति अच्छी तरह से शारीरिक और मानसिक रूप से फिट हो, सबसे अच्छे पारस्परिक संबंध हो और आध्यात्मिक रूप से जागृत हो। सेहतमंद जीवन का आनंद लेने के लिए अपने स्वास्थ्य के हर पहलू का अत्यधिक ध्यान रखना चाहिए।

मूल रूप से स्वास्थ्य के पाँच घटक हैं। एक व्यक्ति को स्वस्थ तब माना जाता है जब ये सभी घटक सही होते हैं।

1. **शारीरिक स्वास्थ्यः** शारीरिक स्वास्थ्य शारीरिक रूप से फिट होना और सभी बीमारियों से रहित होने से संबंधित है। अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य लंबे जीवन काल को बढ़ावा देता है।

2. **मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्यः** इसमें एक व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक कल्याण भी शामिल है। मानसिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए शारीरिक स्वास्थ्य को बरकरार रखना महत्वपूर्ण है।

3. **सामाजिक स्वास्थ्यः** सामाजिक स्वास्थ्य समाज में अपने दोस्तों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों और अन्य लोगों के साथ पारस्परिक संबंधों को संवारने और बनाए रखने की क्षमता रखता है।

4. **संज्ञानात्मक स्वास्थ्यः** जब एक व्यक्ति का मस्तिष्क सभी मानसिक प्रक्रियाओं को कुशलता से निष्पादित करता है तो उसे अच्छे संज्ञानात्मक स्वास्थ्य का आनंद लेना कहा जाता है। इसमें प्रक्रियाओं और क्रियाकलापों में नई बातें, अच्छे निर्णय और संवाद करने के लिए भाषा का कुशल उपयोग करना शामिल है।

5. **आध्यात्मिक स्वास्थ्यः** यह मूल रूप से जीवन के अर्थ को समझने के लिए किसी व्यक्ति को स्वयं के साथ संबंधों की भावना स्थापित करना है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य को बरकरार रखने से एक व्यक्ति अधिक सकारात्मक, जुझारू और सुलझा हुआ बनता है।

स्वास्थ्य को सुधारने की तकनीक:

1. **स्वस्थ आहार योजना का पालन करें:** अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने की ओर पहला कदम विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों से समृद्ध आहार ग्रहण करना है। आपके आहार में विशेष रूप से ताजे फल और हरी पत्तेदार सब्जियां शामिल होनी चाहिए। इसके अलावा दालें, अंडे और डेयरी उत्पाद भी

हैं जो आपके समग्र विकास और अनाज में मदद करती हैं जो पूरे दिन चलने के लिए ऊर्जा प्रदान करते हैं।

2. **उचित विश्राम करें:** अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पर्याप्त ऊर्जा प्रदान करने और काम करने के लिए ऊर्जा बनाए रखना आवश्यक है। इसके लिए 8 घंटों के लिए सोना ज़रूरी है। किसी भी मामले में आपको अपनी नींद पर समझौता नहीं करना चाहिए। नींद की कमी आपको सुस्त बना देती है और आपको शारीरिक और मानसिक रूप से परेशान करती है।

3. **व्यायाम:** आपको अपने पसंद के किसी भी शारीरिक व्यायाम में शामिल होने के लिए अपने दैनिक कार्यक्रम से कम से कम आधे घंटे का समय निकालना चाहिए। आप तेज़ चलना, जॉगिंग, तैराकी, साइकिल चलाना, योग या कोई भी अन्य व्यायाम का प्रयास कर सकते हैं। यह आपको शारीरिक रूप से फिट रखता है और अपने दिमाग को आराम देने का एक शानदार तरीका भी है।

4. **ध्यान लगाना:** ध्यान आपके मन को शांत करने और आत्मनिरीक्षण करने का एक शानदार तरीका है। यह आपको एक उच्च स्थिति में ले जाता है और आपके विचारों को और अधिक स्पष्टता देता है। इससे मानसिक स्वास्थ्य अच्छी रहती है।

5. **सकारात्मक लोगों के साथ रहें:** सकारात्मक लोगों के साथ रहना आवश्यक है। उन लोगों के साथ रहें जिनके साथ आप स्वस्थ और सार्थक चर्चाओं में शामिल हो सकते हैं तथा जो आपको निराश करने की बजाए आपको बेहतर करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। यह आपके भावनात्मक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।

6. **रूटीन चेक-अप कराते रहें:** वार्षिक स्वास्थ्य जांच कराना एक अच्छा विचार है। सावधानी हमेशा इलाज से बेहतर है। इसलिए यदि आप अपनी वार्षिक रिपोर्ट में किसी भी तरह की कमी या किसी भी तरह की कमी देखते हैं तो आपको तुरंत मेडिकल सहायता प्राप्त करनी चाहिए और इससे पहले कि यह बढ़े इसे ठीक कर लेना चाहिए।

आज के समय में लोग इतने व्यस्त है कि वे अपने स्वास्थ्य की देखभाल करना भूल जाते हैं। यह समझना आवश्यक है कि स्वास्थ्य सबसे पहले है। स्वास्थ्य को अनुकूलित करने और सेहतमंद रहने के लिए उपर्युक्त बिंदुओं का पालन करना चाहिए। तन और मन से स्वस्थ रहने से जीवन खुशहाल हो जाता है। सदा स्वस्थ रहे और संतुष्ट रहे।

आभार

➲ **श्री आकाश आनंद सोलंकी**

भा.वा.अ.शि.प.-काष्ठ विज्ञानं एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

उस रात मैं अर्थात मनुष्य गहरी नींद में निश्चिन्त होकर सो रहा था। एयर कंडीशनर की मीठी हवा मेरे शरीर को आनंदित करने वाला अनुभव दे रही थी कि अचानक एक तेज़ प्रकाश स्रोत मेरे शयन कक्ष में प्रवेश करता है। मैंने देखा कि वो ईश्वर थे, वह मेरी तरफ आगे बढ़े और कहा कि तुम्हारा समय इस धरती पर समाप्त हो चुका है अतः मुझे उनके साथ जाना पड़ेगा। यह सुनकर मैं स्तब्ध सा रह गया परन्तु किसी प्रकार साहस जुटा कर मैंने पूछा, "प्रभु! अभी मेरी आयु बहुत कम है और कई सारे पारिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्व भी पूरे करने है, कृपा करके मुझे कुछ समय और दे दीजिये।"

उन्होंने मेरी तरफ क्रोध दृष्टि से देखा और कहा, "तुम अपनी महत्वकांक्षाओं को उत्तरदायित्व नहीं कह सकते। तुम शायद भूल चुके हो कि मैंने पूरे ब्रह्माण्ड का निर्माण प्रकृति अर्थात जड़ और पुरुष अर्थात् चेतना (ऊर्जा) को मिलाकर किया है और इसलिए तुम्हारा सर्वोच्च उत्तरदायित्व इस प्रकृति के लिए बनता है।"

मैंने हाथ जोड़ कर कहा, "प्रभु ! मानव कल्याण भी मेरे कई सारे उत्तरदायित्वों में से एक है और इसके लिए ही मैंने कई नए अविष्कार और खोजों को जन्म दिया हैं।"

ईश्वर ने कहा, "तुम्हारी उत्तरजीविता के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं जैसे जल, खाद्य, वायु, प्रकाश, अग्नि, धरती इत्यादि को मैंने उपलब्ध करवाया है, किन्तु तुमने अपने ज्ञान का उपयोग सिर्फ अपने जीवन को आरामदायक और मनोरंजक बनाने वाली वस्तुओं के निर्माण के लिए किया है। ऐसा करके तुमने सम्पूर्ण प्रकृति का संतुलन बिगाड़ दिया है और अपना ही नहीं बल्कि सभी प्राणियों का अस्तित्व खतरे में डाल दिया हैं। यह सब रोकने का एक ही उपाय है कि तुम्हे मैं अपने साथ ले जाऊ।"

यह सब सुनकर मुझे आभास हुआ कि हमने अपनी बुद्धि का प्रयोग कितने गलत प्रकार से किया है, भला कोई अपनी ही जड़ों को नष्ट करता है। मैंने हाथ जोड़ कर ईश्वर से अपने किये कि माफ़ी मांगी और विनती की कि मुझे एक अवसर दिया जाये ताकि में इस प्रकृति को जो भी हानि हुई है उसकी प्रतिपूर्ति कर सकूँ।

ईश्वर ने मेरी तरफ देख कर स्वीकृति में सर हिलाया और कहा कि सदैव स्मरण रहे कि "तुम प्रकृति से हो, प्रकृति तुमसे नहीं"

मैं पूरी रात यह सोचता रहा कि मनुष्य कितना स्वार्थी है कि अपने घर, कार्यालय और समाज में मिलने वाले व्यक्तियों का अपनी आवश्यकता की अनुरूप आभार व्यक्त करता है किन्तु यह प्रकृति जो बिना मांगे इतना कुछ दे रही है, उसके प्रति कोई दायित्व नहीं निभाता और न ही कभी उसे धन्यवाद कहता है।

वैज्ञानिक अनुसंधान प्रसार में हिंदी भाषा का उपयोगः समय की मांग

श्री मनीष कुमार विजय
भा.वा.अ.शि.प. - उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

हिंदी भाषा, चीनी के बाद पृथ्वी पर सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में दूसरा स्थान रखती है। इसे भारत की सार्वजनिक और आधिकारिक भाषा के रूप में देखा जाता है। हमारे देश की बड़ी आबादी हिंदी को पहली भाषा के रूप में इस्तेमाल करती है। भारत को वैज्ञानिक रूप से अधिक उन्नत बनाने और लोगों में वैज्ञानिक सोच को स्थापित करने के लिए, विज्ञान के आविष्कारों को उपयोगकर्ता तक पहुँचाना बहुत आवश्यक हैं। भारत सरकार द्वारा आधिकारिक तौर पर इस्तेमाल की जाने वाली भाषाओं में से, अंग्रेजी को बड़े पैमाने पर विज्ञान के लिए देश की भाषा माना जाता है, लेकिन देश के केवल 10-12 (लगभग) प्रतिशत लोग ही इसे बोल और लिख सकते हैं। यह देखा गया है कि वैज्ञानिक सहित अनुसंधान से जुड़े लोग आमतौर पर अंग्रेजी भाषा में पारंगत होते है, लेकिन विकसित तकनीक के, जो अंतिम उपयोगकर्ता हैं, वह बड़ी संख्या में अंग्रेजी बोल और समझ नहीं पाते हैं। इसलिए, प्रौद्योगिकी डेवलपर और अंतिम उपयोगकर्ताओं के बीच बेहतर समझ के लिए हिन्दी भाषा को बढ़ावा देना और लागू करना महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक अनुसंधान का हिंदी में प्रसार के तरीकेः हिन्दी भाषा को बढ़ावा देना के लिए निम्न उपायो पर विचार किया जा सकता हैः

1. **वैज्ञानिक पुस्तकों, वैज्ञानिक पत्रिकाओं एवं लेखों का हिंदी में प्रकाशनः** आज आजादी के 75 साल बाद भी देश में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में मानक पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। आईआईटी, दिल्ली, हिंदी में पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए एक महत्वपूर्ण पहल के तहत अपने स्वयं के प्रोफेसरों द्वारा हिंदी पुस्तकें लिखने की योजना बना रहे हैं। प्रौद्योगिकी की पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में ज्ञान रखने वाले विषय के विशेषज्ञों द्वारा सरल हिंदी में लिखी जानी चाहिए। तकनीकी विषयों के लिए हिंदी लेखकों और अनुवादकों की भर्ती की जा सकती है।

2. **वैज्ञानिक संस्थानों में हिंदी शिक्षा पर नीतिगत निर्णयः** मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सभी वैज्ञानिक विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में हिंदी शिक्षण योजना को लागू करने के लिए एक कार्य योजना तैयार करनी चाहिए और एक सामान्य कानून को लागू करने की प्रक्रिया शुरू करनी चाहिए और इसे संसद के दोनों सदनों के समक्ष पेश करना चाहिए। साथ ही ऐसे विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों पर ध्यान देना चाहिए जहां हिंदी विभाग नहीं हैं, उन्हें हिंदी विभाग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि ये विभाग हिंदी माध्यम से शिक्षा प्रदान करने में मदद कर सकें।

3. **हिंदी समाचार पत्रः** अंग्रेजी अखबार लोगों को दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक मुद्दों पर लेखों के रूप में थोड़ी बहुत जानकारी दे रहे हैं। लेकिन समस्या यह है कि बहुत से लोग अंग्रेजी अखबारों की सामग्री को नहीं समझ सकते हैं। अध्ययनो में यह पाया गया है कि हिंदी समाचार पत्रों में औसतन केवल 1.74 प्रतिशत और अंग्रेजी समाचार पत्रों में 2.34 प्रतिशत समाचार ही वैज्ञानिक मुद्दों पर दिए जाते हैं (मीनू कूमारी, 2013)। इसलिए अधिक वैज्ञानिक जानकारी को समायोजित करने के लिए हिंदी समाचार पत्रों में स्थान आवंटन बढ़ाया जाना चाहिए जिससे देश की बड़ी आबादी को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में जागरूक किया जा सके।

4. **हिंदी अनुसंधान वेबसाइटः**देश भर में लोगों तक वैज्ञानिक तकनीकीयों को पहुंचाने के लिए अनुसंधान वेबसाइट विकसित करने की आवश्यकता है। रिसर्च मैटर्स एक एसी ही वेबसाइट है, जिसे नवंबर 2016 में लॉन्च किया गया था। यह विज्ञान समाचार और लेखों को कई भाषाओं में तैयार करती है।

5. **हिंदी में वैज्ञानिक शिक्षाः** छात्रों को विज्ञान को समझने के लिए भाषा की भूमिका को समझना

चाहिए। इससे छात्रों में विज्ञान साक्षरता बढ़ाने में मदद मिलेगी। विज्ञान पाठ्यक्रम के लिए भाषा विकास के लिए स्पष्ट योजना के महत्व के साथ-साथ इसमें उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समझना और इसे हल करने के लिए एक पद्धति विकसित करना भी आवश्यक है।

6. **हिंदी पॉडकास्टः**हमारे देश के वैज्ञानिक और नीति निर्माता, देश के नागरिकों और निवासियों, जिनकी मुख्य भाषा अंग्रेजी नहीं है, तक विज्ञान लाने हेतु नए-नए तरीके खोज रहे है, पॉडकास्ट उनमें से ही एक आधुनिक विकल्प हैं। इंडसाईकम्यु जो कि एक ऑनलाइन विज्ञान-संचार समूह है, ने सी ऑफ साइंस नाम से, हिंदी, कन्नड़, मराठी, असमिया और तमिल में एक पॉडकास्ट श्रृंखला शुरू की, जो जैविक अनुसंधान में उपयोग किए जाने वाले मॉडल जीवों के बारे में बात करती है।

7. **हिंदी सोशल मीडिया पोस्टः** इंटरनेट के आगमन के साथ उन बहु-भाषा प्रयासों का विस्तार होना शुरू हो गया, जिसमें नए दर्शकों तक आसान पहुंच प्रदान की है। डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया ने शोधकर्ताओं और अन्य लोगों को वैज्ञानिक निष्कर्षों और खोजों को जनता तक पहुंचाने में मदद की हैं, लेकिन ऐसा कोई भी प्रयास तब तक व्यर्थ है जब तक की उपयोगकर्ता उस भाषा को बोल या पढ़ नहीं सकते हैं। डॉ. के. विजयराघवन, एक आणविक जीवविज्ञानी और सरकार के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार, विज्ञान को उनकी पहली भाषा में लोगों के लिए सुलभ बनाने के मुखर समर्थक रहे है एवं इसके लिए प्रयासरत हैं।

8. **हिंदी वार्ताः**भारत में हिंदीं में टेड वार्ता को दिसंबर 2017 में लॉन्च किया गया था, और इसमें प्रमुख वैज्ञानिक शामिल होते हैं जो हिंदी में तंत्रिका विज्ञान और खगोल विज्ञान जैसे विषयों पर चर्चा करते हैं।

9. **हिंदी साइंस चेनलः** भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने दूरदर्शन के साथ मिलकर डीडी साइंस, और इंटरनेट-आधारित इंडिया साइंस को लॉन्च किया। दोनों में हिंदी और अंग्रेजी में विज्ञान आधारित प्रोग्रामिंग की सुविधा है।

10. **हिंदी सर्च इंजनः** इंटरनेट, तेजी से बढ़ने के साथ विभिन्न भाषाओं में वेब पेजों को तेजी से होस्ट कर रहा है। स्थानीय उपयोगकर्ता की जरूरतों को पूरा करने और उन्हें उनकी मूल भाषाओं में जानकारी प्रदान करने के लिए प्रभावी खोज इंजन की आवश्यकता होती है। हिंदी भाषा की वेब सूचना पुनर्प्राप्ति संतोषजनक स्थिति में नहीं है। वर्ल्ड वाइड वेब पर हिंदी की उपस्थिति अभी भी संभावित दृष्टिकोण और तकनीकी कारकों के कारण सीमित है।

11. **हिंदी शब्दावली के लिए राष्ट्रीय शब्दावली पुस्तकालयः** सरकारी कार्यालय एवं संस्थान विभिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी अंग्रेजी शब्दों के लिए विभिन्न हिंदी पर्यायवाची शब्दों का उपयोग कर रहे हैं जो हिंदी के कार्यान्वयन में समस्या पैदा करते हैं। भाषा को व्यावहारिक उपयोग में आसान बनाने के लिए अंग्रेजी के कठिन शब्दों का हिंदी में भी लिप्यंतरण एवं एक राष्ट्रीय शब्दावली पुस्तकालय की स्थापना किया जाना आवश्यक है। पाठ्यचर्या की पुस्तकें मूल रूप से हिंदी में लिखी जानी चाहिए न कि अंग्रेजी से हिंदी में अनुवादित। इस समस्या को दूर करने के लिए हिन्दी का ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञ प्राध्यापकों द्वारा ही विषयों की पठन सामग्री तथा पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में तैयार की जानी चाहिए।

निष्कर्षः वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी विकासकर्ता, विस्तार विशेषज्ञ, नीति निर्माता, सरकार, अनुवादकों और अंतिम उपयोगकर्ता को हर संभव प्रयास करने की आवश्यकता है जिससे वैज्ञानिक प्रौद्योगिकीयों का समुचित उपयोग किया जा सके। उपरोक्त उल्लिखित माध्यमों को अपनाने से प्रौद्योगिकी विकासकर्ताओं और अंतिम उपयोगकर्ताओं के बीच विज्ञान संचार के अंतराल को भरना संभव होगा।

सिक्किम के महत्वपूर्ण हाई-एल्टीट्यूड आर्द्रभूमि: महत्व, खतरे और संरक्षण

श्री प्रदीपन राय एवं डॉ. ध्रुब ज्योति दास
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

परिचय: हाई-एल्टीट्यूड वेटलैंड्स (एचएडब्ल्यू) एक सामान्य शब्द है जिसका उपयोग 3,000 मीटर समुद्र स्तर से ऊपर और उससे आगे की ऊंचाई पर स्थित आर्द्रभूमि के लिए किया जाता है। भारत में, एचएडब्ल्यू हिमालय के ऊंचे इलाकों (मध्य, ग्रेटर और ट्रांस-हिमालयी क्षेत्रों में) जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश में स्थित हैं। पूर्वी हिमालय की गोद में बसा सिक्किम न केवल अपने लुभावने परिदृश्य के लिए जाना जाता है, बल्कि अपनी समृद्ध जैव विविधता के लिए भी जाना जाता है।अपने प्राकृतिक खजाने के बीच, सिक्किम के एचएडब्ल्यू महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र के रूप में खड़े हैं। राष्ट्रीय आर्द्रभूमि सूची और मूल्यांकन(2011) के अनुसार,सिक्किम में झीलों और तालाबों की श्रेणी से संबंधित केवल प्राकृतिक अंतर्देशीय आर्द्रभूमि है। राज्य में 405 उच्च ऊंचाई वाली झीलें (आर्द्रभूमि) हैं जो मूल रूप से छोटी और उथली हैं जो ज्यादातर ग्लेशियरों द्वारा पोषित हैं और अत्यधिक पवित्र मानी जाती हैं। झीलों को लोकप्रिय रूप से छोखा या त्सो या छोना (भूटिया में), छो (लेप्चा में) और पोखरी या झील या ताल (नेपाली में) कहा जाता है। इन 405 एचएडब्ल्यू में से, सिक्किम में केवल दो आर्द्रभूमि बेहद लोकप्रिय और महत्वपूर्ण हैं:

(1) त्सोमगो (छांगू) **झील:** अंडाकार आकार की, त्सोमगो झील 24.47 हेक्टेयर के क्षेत्र को कवर करती है और राज्य में सबसे प्रसिद्ध एचएडब्ल्यू में से एक है। स्थानीय लोगों द्वारा पवित्र माना जाता है और पूर्वी जिले में गंगटोक से लगभग 40 किमी दूर नाथुला के रास्ते में लगभग 3,753 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। यह झील सर्दियों के महीनों के दौरान मध्य मई तक जमी रहती है। यह ग्लेशियल झील मानव बस्तियों और वन्यजीवों दोनों के लिए पानी के प्राथमिक स्रोत के रूप में सेवा करके इस क्षेत्र के हाइड्रोलॉजिकल संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रवासी पक्षियों के साथ इसके मंत्रमुग्ध परिदृश्य ने हर साल कई पर्यटकों को आकर्षित किया है जो स्थानीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते है ।

गुरुडोंगमार झील

(2) गुरुडोंगमार वेटलैंड्स कम्पलेक्स (जीडब्ल्यूसी): 5150-5430 मीटर की ऊंचाई पर अंतर्राष्ट्रीय सीमा के पास सिक्किम के उत्तरी जिले में स्थित,जीडब्ल्यूसी 329 हेक्टेयर में फैला है और तीस्ता नदी के हेडवाटर का निर्माण करता है। प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार जीडब्ल्यूसी में विविध प्रजातियां पाए जाते हैं जिनमें कम से कम 52 बैक्टीरियल आइसोलेट्स, 15 फाइटोप्लांकटन, 20 मैक्रोफाइट्स, 02 उभयचर, 09 जलपक्षी प्रजातियां और 15 स्तनपायी प्रजातियां शामिल हैं। कियांग, ब्लूशीप, तिब्बती गज़ेल और तिब्बती अर्गलीइस क्षेत्र के लिए स्थानिक चार अनगुलेट्स प्रजातियां हैं। झील स्थानीय आबादी के लिए धार्मिक महत्व रखती है।यह विनियमित पर्यटन के लिए खोला गया है।

त्सोमगो झील

सिक्किम के विशेष संदर्भ में इन उच्च ऊंचाई वाले आर्द्रभूमि का महत्व:

क).सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य: कम आबादी वाले क्षेत्रों के भीतर स्थित होने के बावजूद, एचएडब्ल्यू का स्थानीय समुदायों के लिए आजीविका, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व है। त्सोमगो (छांगू) झील और गुरुडोंगमार वेटलैंड कॉम्प्लेक्स (जीडब्ल्यूसी) दोनों सिक्किम के सांस्कृतिक लोकाचार में गहराई से जुड़े हुए हैं और बौद्ध तीर्थ यात्रियों के लिए एक पवित्र स्थान है। पूरे राज्य से आने वाले स्थानीय लोग आर्द्रभूमि के साथ अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों को चिह्नित करते हुए वार्षिक तीर्थ यात्रा करते हैं। वे कई लोगों द्वारा पूजनीय हैं और उन्हें राज्य की एक पवित्र झील के रूप में नामित किया गया है जो कई स्थानीय किंवदंतियों और लोक कथाओं में विशेष उल्लेख पाता है। गुरुडोंगमार झील को गुरु पद्मसंभव का आशीर्वाद प्राप्त है। उत्तरी सिक्किम के लाचेनपा और लाचुंगपा सहित अन्य समुदायों ने मौसमी ट्रांसहूमनट्रांस-हिमालयन कृषि-देहातीवाद का अभ्यास करते आया है।याक चरवाहे या डोक्पा भी पशुधन और औषधीय,सुगंधित और खाद्यपौधों के संग्रह के लिए इन आर्द्रभूमि से जुड़े चरागाहों पर सीधे निर्भर हैं।

ख). जल-शासन नियामक: एचएडब्ल्यू कई तंत्रों द्वारा जल शासन को विनियमित करता है जिसमें परिवर्तनीय वर्षा को स्थिर प्रवाह में परिवर्तित करना,बर्फ पैक से धाराओं में पानी के पारित होने को धीमा करना, भूजल पुनर्भरण और उप-सतह जल निकासी में सुधार करना और शुष्क अवधि के दौरान धारा-प्रवाह की आपूर्ति करना शामिल है। गुरुडोंगमार झील छोम्बो छू धारा के स्रोत के रूप में कार्य करती है, जो अंततः त्सो ल्हामो झील से बहने वाली एक और धारा से मिलती है और एक साथ तीस्ता नदी बनाती है। प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि जीडब्ल्यूसी 170 मिलियन क्यूबिक मीटर वर्षा की संचयी भंडारण क्षमता प्रदान करते हैं, जो चोपता, थंगू और लाचेन क्षेत्रों के डाउनस्ट्रीम समुदायों को बाढ़ बफर प्रदान करते हैं।

ग). प्रजातियां और निवास स्थान: एचएडब्ल्यू अन्यथा शुष्क परिदृश्य में पानी प्रदान करता है, और यह एक कारण है कि इन आर्द्रभूमि के आसपास के क्षेत्रों में उल्लेखनीय और जातीय-वानस्पतिक महत्व पुष्प और साथ ही जीव प्रजातियों का निवास है। हिम तेंदुआ, तिब्बती गज़ेल, तिब्बती अर्गली, तिब्बती जंगली गधे और नीली भेड़ पठारी क्षेत्र एचएडब्ल्यू में चारा खोजने और प्रजनन के लिए निवास करते हैं। वे प्रवासी जलपक्षी प्रजातियों जैसे रुडी शेलडक, ब्राह्मणी बतख, ब्लैक नेक्ड क्रेन आदि को भी निवास करते हैं।

घ).स्थानीय जलवायु नियामक और कार्बन सिंक: एचएडब्ल्यू,विशेष रूप से बड़े खुले पानी के क्षेत्रों जैसे कि त्सोमगो और गुरुडोंगमार झील में गर्मी और विकिरण अवशोषण की उच्चदर होती है, इस प्रकार आसपास के क्षेत्रों को परिदृश्य केअन्य हिस्सों की तुलना में अपेक्षाकृत ठंडा या गर्म बना दिया जाता है।वे बादल गठन,वर्षा और वाष्पीकरण को भी प्रभावित करते हैं।पीटलैंड जैसे कई एचएडब्ल्यू की मिट्टी को कार्बन की उच्च मात्रा को स्टोर करने के लिए जाना जाता है जिससे वे महत्वपूर्ण कार्बन सिंक बन जाते हैं। हालांकि त्सोमगो झीलऔर जीडब्ल्यूसी के लिए मिट्टी के कार्बन काआकलन नहीं किया गया है, फिर भी वे प्रमुख कार्बन सिंक हैं।बारहमासी वनस्पति आवरण की उपस्थिति,स्थायी जलभराव की स्थिति, कम तापमान और वायुमंडलीय दबाव आर्द्रभूमि मिट्टी में कार्बन संचय के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करते हैं।

इसके विशाल धार्मिक और पारिस्थितिक महत्व के बावजूद, इन त्सोमगो झील और गुरुडोंगमार वेटलैंड्स कॉम्प्लेक्स दोनों को खतरों का सामना करना पड़ता हैं: ए) जलवायु परिवर्तन, बी) गैर-विनियमित पर्यटन, सी) ओवर चराई, डी) जंगली कुत्ते का उपद्रव और ई) बुनियादी ढांचे के विकास और प्रदूषण।

स्थानीय प्रशासन द्वारा किए गए संरक्षण प्रयास: सिक्किम के इन एचएडब्ल्यू की सुरक्षा और संरक्षण के प्रयास चल रहे हैं। स्थानीय समुदाय इस प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा और संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एचएडब्ल्यू प्रबंधन में सामुदायिक जुड़ाव का एक उत्कृष्ट उदाहरण त्सोमगो (छांगू) झील में

पुखरी संरक्षण समिति (पीएसएस) है। सिक्किम सरकार के साथ साझेदारी में ग्राम पंचायतों और पोखरी संरक्षण समितियों ने 2006 में झील संरक्षण के लिए दिशानिर्देश तैयार किए थे। वार्ड सदस्यों और वन विभाग और गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ ग्राम सभा के तहत गठित, पीएसएस पोखरी रक्षक (झील संरक्षक) को झील संरक्षण योजना के विकास और सरकार और पंचायतों के समर्थन से जमीन पर कार्रवाई को लागू करने के लिए नियुक्त करता है। इसी तरह, जीडब्ल्यूसी को भी राज्य के प्राथमिकता संरक्षण स्थल के रूप में पहचाना गया है और पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 के तहत सुरक्षा प्राप्त करता है। डीएसटी सिक्किम, डब्ल्यूडब्ल्यूएफ-इंडिया आदि जैसे संगठन लाचेन जुम्सा (स्थानीय प्रशासनिक निकाय) और लाचेन पर्यटन विकास समिति (एलटीडीसी) के साथ साझेदारी में इस झील के संरक्षण के लिए प्रयास कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, यूएसएआईडी-वित्त पोषित डब्ल्यूडब्ल्यूएफ एशिया हाई माउंटेन कार्यक्रम के समर्थन से एक गांव कचरा संग्रह और प्रबंधन प्रणाली स्थापित की गई है। 2007 के सिक्किम वन और जल पाठ्यक्रम (संरक्षण और संरक्षण विधेयक) ने भी आर्द्रभूमि प्रवर्तन और अधिकार क्षेत्र को रेखांकित किया था।

वर्ष 2004 में राज्य सरकार ने सिक्किम के तीन आर्द्रभूमियों अर्थात् पश्चिम सिक्किम में खेचेओपारी झील, पूर्वी सिक्किम में त्सोमगो-कुपप और नाथंग परिसर और उत्तरी सिक्किम में त्सो ल्हामू-गुरु डोंगमार-ग्याम त्सो-ना परिसर को अंतरराष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि की रामसर सूची में शामिल करने का प्रस्ताव दिया था। हालांकि, आर्द्रभूमि सचिवालय द्वारा इसे यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि इन बोलियों को रेखांकित करने वाले डेटा काफी हद तक गुणात्मक थे और सिक्किम सरकार के गैर-विशेषज्ञ अधिकारियों द्वारा सूचित किए गए थे। फिर भी, तीन आर्द्रभूमि परिसरों को अंतर्राष्ट्रीय महत्व के आर्द्रभूमि के रूप में अनुसमर्थन करने का सिक्किम सरकार का प्रयास उचित प्रलेखन, उनके ऐतिहासिक पारिस्थितिकी, सांस्कृतिक महत्व, या पर्यावरण प्रबंधन और इन आर्द्रभूमियों के औपचारिक चित्रण पर पर्याप्त डेटा सृजन का काम चल रहा है। आरएफआरआई, जोरहाट ने अध्ययन किया था और पश्चिम सिक्किम की पवित्र खेचियोपारी झील के वाटरशेड की वनस्पति और इसके मिट्टी के बीज बैंक की पुष्प विविधता, प्रमुख पेड़ प्रजातियों की पुनर्जनन स्थिति और बायोमास कार्बन का दस्तावेजीकरण किया है।ये परिणाम मात्रात्मक और वैज्ञानिक रूप से इस विशेष झील को रामसर साइट के रूप में शामिल करने की बोली को मजबूत करेंगे।

निष्कर्ष: सिक्किम के एचएडब्ल्यू अमूल्य पारिस्थितिक तंत्र हैं जो जैव विविधता संरक्षण, जल प्रावधान और जलवायु विनियमन सहित पारिस्थितिक सेवाओं की एक श्रृंखला प्रदान करते हैं। हालांकि, इन आर्द्रभूमियों को घरेलू पर्यटन, प्रदूषण और अपशिष्ट प्रबंधन से कई खतरों का सामना करना पड़ता है। सिक्किम इको-पर्यटन से महत्वपूर्ण राजस्व प्राप्त करता है, जिसमें घरेलू पर्यटक (यानी, भारतीय नागरिक) आगंतुकों का विशाल बहुमत बनाते हैं। घरेलू पर्यटकों को एचएडब्ल्यू के आसपास स्थानीय प्रथाओं के प्रति बहुत कम संवेदनशीलता होने की सूचना मिली है। पर्यटन हितधारकों और टूर ऑपरेटरों के बीच सीमित संचार से ये व्यवहार बढ़ जाते हैं, जिसने अपशिष्ट प्रबंधन संकटों को और सुविधाजनक बना दिया है। छोटे पैमाने पर स्वच्छता सुविधाओं से कचरा ओवरफ्लो और मानव अपशिष्ट एचएडब्ल्यू को परेशान करता है, जिनके पास पर्यटकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए सीमित बुनियादी ढांचा है। इसके अलावा, वाहनों के यातायात, सड़क निर्माण और सैन्य गतिविधियों से आर्द्रभूमि अवसादन, आंशिक रूप से, भारतीय-सीमा पार सीमा के साथ खंडित और अवक्रमित आर्द्रभूमि है। अंत में, गैर-देशी प्रजातियां, विशेष रूप से घरेलू कुत्ते, एचएडब्ल्यू जैव विविधता को खतरे में डालते हैं।

प्रभावी संरक्षण उपायों को लागू करके और हितधारकों के बीच जागरूकता बढ़ाकर, हम इन नाजुक पारिस्थितिक तंत्रों की रक्षा कर सकते हैं और भविष्य की पीढ़ियों के आनंद के लिए उनके संरक्षण को सुनिश्चित कर सकते हैं। आर्द्रभूमि पारिस्थितिक तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए अपशिष्ट प्रबंधन और टिकाऊ पर्यटन प्रथाओं पर सख्त नियमों का कार्यान्वयन। इन आर्द्रभूमियों के पारिस्थितिक स्वास्थ्य पर डेटा एकत्र करने और संरक्षण रणनीतियों का मार्गदर्शन करने के लिए अनुसंधान और निगरानी पहल को मजबूत करना।

साल वनों का द्वीप: बस्तर

श्री सौरभ दुबे, श्री नाहर सिंह मावई, श्री शशिकिरण बर्वे एवं श्री आनंद कुमार

भा.वा.अ.शि.प.-उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

बस्तर अंचल छत्तीसगढ़ राज्य के दक्षिणी भाग मे स्थित है तथा वन सम्पदा से समृद्ध है। यह क्षेत्र घने साल वनों तथा मिश्रित साल वनों से आच्छादित है। वनों में साल के वृक्षों की अधिकता के कारण ही बस्तर को साल वनों का द्वीप कहा जाता है । साल वृक्ष, छत्तीसगढ़ राज्य के राजकीय वृक्ष के रुप में प्रतिष्ठित है तथा इसे राज्य की विशेष वृक्ष प्रजाति के तौर पर पहचाना जाता है। इसका वान्स्पतिक नाम *Shorea robusta* है। संस्कृत में इसे अश्वकर्ण कहते हैं। स्थानीय बोलचाल की भाषा में सरई, साखू या सखुआ आदि भी कहा जाता है। यह अनुकूल वातावरण मिलने पर 30 मीटर से अधिक ऊँचाई तक बढ़ सकने वाला बहुवर्षीय वृक्ष है। इसका मजबूत तना इसको सीधी ऊँचाई में बढ़त लेने मे सहायता करता है। इसकी कठोर व मजबूत लकड़ी का प्रयोग प्रकाष्ठ के रुप बहुतायत में किया जाता है।

साल वनों के निकट रहने वाले आदिवासी समुदाय अपने जीवन यापन के लिये बहुत हद तक इन वनों पर ही निर्भर करते हैं। इसकी नर्म शाखायें, बीज, पत्तियाँ, रेजिन तथा लकड़ी आदि, विभिन्न प्रकार से आदिवासियों के जीवनयापन में बहुत सहयोगी है। बहुत सी वृक्ष प्रजातियाँ साल वन में बहुतायत में मिलती हैं, जिनमें तेंदु, महुआ और चिरौंजी प्रमुख हैं। इसके अलावा साजा, जामुन, हर्रा, बहेरा व कर्रा आदि वृक्ष प्रजातियाँ भी बस्तर के साल वनों में मिलती हैं। औषधीय पौधों में कालमेध, सालपर्णी, काली मूसली, सफेद मूसली, मालकाँगनी तथा सतावर आदि मिलती हैं। साल वनों से प्राप्त वनोपज का संग्रहण करना तथा उसे बेचना ही आदिवासी समुदाय की आय के प्रमुख श्रोतों में से एक है। विभिन्न प्रकार की वनोपज जैसे - तेंदू पत्ता, लाख, हर्रा, बहेरा, चिरोंजी, महुआ फूल व गुल्ली, औषधियां, कोषा आदि के अलावा साल बीज तथा साल की राल (रेजिन या धूप) का भी संग्रहण प्रमुख तौर पर घने तथा मिश्रित साल वनों से किया जाता है। वन विभाग द्वारा लघु वनोपजों को खरीदने हेतु समर्थन मूल्य भी जारी किया जाता है तथा वन समितियों के माध्यम से इन लघु वनोपजों को खरीदा जाता है, जिससे आदिवासी समुदाय के लोगों को अपनी मेहनत का उचित मूल्य प्राप्त हो सके।

बारिश के मौसम में साल वनो से विभिन्न प्रकार के मशरुम जैसे - साल बोडा, हरदुली फुट्, साल फुट् तथा छाती फुट् आदि एकत्र किये जाते हैं। साल वनों से प्राप्त होने वाले अनेक अकाष्ठ वनोपजों के साथ ही, साल का सम्पूर्ण वृक्ष भी बहुत उपयोगी है। इससे प्राप्त बीज, लकड़ी, पत्ते व राल का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता हैं ।

साल बीज: साल बीज का संग्रहण एक प्रमुख लघु वनोपज के तौर पर किया जाता है। साल के फल में पंख जैसी संरचना होती है, जो इसके बीजों को हवा में उड़ाकर, उनके दूर तक प्रसारण में सहायता करते हैं। इसके पके हुये फल जमीन पर गिरने के साथ ही इनकों एकत्र करने के लिये ग्रामीण वृक्षों के चारो तरफ पत्तियों आदि की सफाई कर देते हैं, जिससे बीज एकत्र करना आसान हो जाता है। इन बीजों का उपयोग वसा निष्कर्षण के लिए किया जाता है तथा इनसे प्राप्त तेल का प्रयोग साबुन बनाने तथा स्थानीय लोगों द्वारा कान दर्द तथा अन्य रोगों के उपचार में किया जाता है।

साल रेजिन या राल: रेजिन या राल, साल के वृक्ष से निकलने वाला एक प्रकार का स्राव है, जिसका संग्रहण प्रमुख रुप से किया जाता है। यह बोरर कीटों के लार्वा को नष्ट करने में वृक्ष के सुरक्षा तंत्र के रुप में काम करता है। राल के सूख जाने पर इसका संग्रहण किया जाता है। इसका प्रयोग अगरबत्ती तथा धूपबत्ती को बनाने मे उपयोग होने वाले सुगंधित घटक के तौर पर किया जाता है। स्थानीय आदिवासी समुदाय के लोग इस राल से पूजा - पाठ करने तथा जादू - टोना हटाने वाले रक्षात्मक उपाय के रुप में करते हैं। स्थानीय बाजारों में यह राल बेचते व खरीदते हुये लोगों को देखा जा सकता है। इसकी राल में औषधीय गुण होने के कारण इसका प्रयोग पेट सम्बंधी विकारों आदि को दूर करने के लिए किया जाता है।

साल पत्र (पत्तियाँ): साल की पत्तियों का उपयोग दोना (कटोरियाँ) और पत्तल (प्लेट) के रुप में किया जाता है। इसके पत्तों से बनी टोकरियाँ भी विभिन्न प्रकार के सामानों को रखने के काम आती हैं। स्थानीय ग्रामीण हाट/बाजार हों या जगदलपुर शहर के बाजार, हम आसानी से इस प्रकार के दोने व टोकरियों में सामान रखकर बेंचते हुये आदिवासियों को देख सकते हैं। इसके अलावा चित्रकोट जल प्रपात जैसे पर्यटन स्थलों के पास ही आदिवासी महिलायें इन पत्तों से बने दोने व टोकरियों में ही साल की राल व तीखुर का आटा (एक प्रकार का स्टर्च) भी बेंचती हुई देखी जा सकती हैं। जंगल मे घूमते करते हुये यदि कभी आदिवासियों को शहद मिल जाता है, तो ये कुशल लोग साल के पत्तों को मोड़कर कटोरीनुमा बना लेते हैं और उसमें शहद को निकालकर उसका स्वाद चखते हैं। आदिवासी इसकी पत्तियों से स्वयं के उपयोग के लिये बीड़ी बनाने में करते हैं। साल के पत्तियों की आदिवासी समुदाय में होने वाली शादियों में बहुत महत्ता होती है।

साल दातून: साल की छोटी व नर्म शाखाओं को काटकर दातून के रुप में उपयोग किया जाता है। आदिवासी ही नहीं बल्कि शहरी क्षेत्रों के लोग भी स्थानीय ग्रामीण बाजारों से दातून को खरीदकर उपयोग करते हैं। स्थानीय लोगों के अनुसार इसकी दातून करने से मसूड़े व दाँत स्वस्थ रहते है व मुँह में ताजगी बनी रहती हैं।

साल लकड़ी: साल की मजबूत लकड़ी प्रकाष्ठ में प्रमुखता से जानी जाती है। इसे गृह निर्माण, ट्रक आदि के फ्रेम बनाने के लिये उपयोग किया जाता है। पहले रेल की पटरियों में प्रयोग होने वाले स्लीपर के रुप में इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता था। इसकी लकड़ी से बनी हुई झोपड़ियाँ, दरवाजे व चौखट इत्यादि, अन्य लकड़ियों के मुकाबले अधिक समय तक मजबूत बने रहती है। वनों से सटे ग्रामीण इलाकों में इसकी सूखे पेड़ों से एकत्र की गई लकड़ी से घरों व खेतों को सुरक्षित रखने हेतु बाढ़ (सुरक्षा दीवार) बनायी जाती है।

साल बोडा: बारिश के समय जमीन पर गिरी हुई साल की पत्तियों के नीचे एक प्रकार का मशरूम जिसे साल बोडा कहते हैं, निकलता हैं। इस सालाना वनोंपज को एकत्र करने के लिये आदिवासी महिलायें व बच्चे सुबह से ही इनकी तलाश करने जंगल के अंदर चले जाते हैं। बोडा बहुत ही पौष्टिक व खाने में स्वादिष्ट होता है, और यह वर्ष में कुछ ही दिनों के लिये उपलब्ध होता है, इसलिये इसकी बाजारों में माँग भी अच्छी होती है।

साल एक बहुउपयोगी वृक्ष हैं, इसका प्रत्येक भाग किसी न किसी रुप में हमारे काम हैं। इसके बीज, पत्ते, लकड़ी व राल आदि का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है । आदिवासी समुदाय इनका संग्रहण करके बाजार में बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं, परंतु आज साल के वन धीरे - धीरे कम हो रहे हैं। साल वनों के विनष्टीकरण के प्रमुख कारणों में से, अवैध लकड़ी कटाई, जंगल में लगने वाली आग, वनों में अत्याधिक पशु चराई तथा विनाशपूर्ण विदोहन आदि शामिल हैं। इसके अलावा साल वृक्ष को बोरर कीटों तथा गेनोडर्मा जैसे फंगी से भी बहुत नुकसान होता है। उक्त सारे कारण मिलकर इन वनों को नष्ट कर रहे हैं। यदि हम सब बस्तर को इसी प्रकार साल वनों की हरितमा से ढका हुआ देखना चाहते हैं, तो हम सभी को वन विभाग के साथ मिलकर इन वनों का संरक्षण करना होगा, जिससे यह क्षेत्र साल वनों का द्वीप हमेशा बना रहे।

साल वन

साल रेजिन या राल

लालित्य

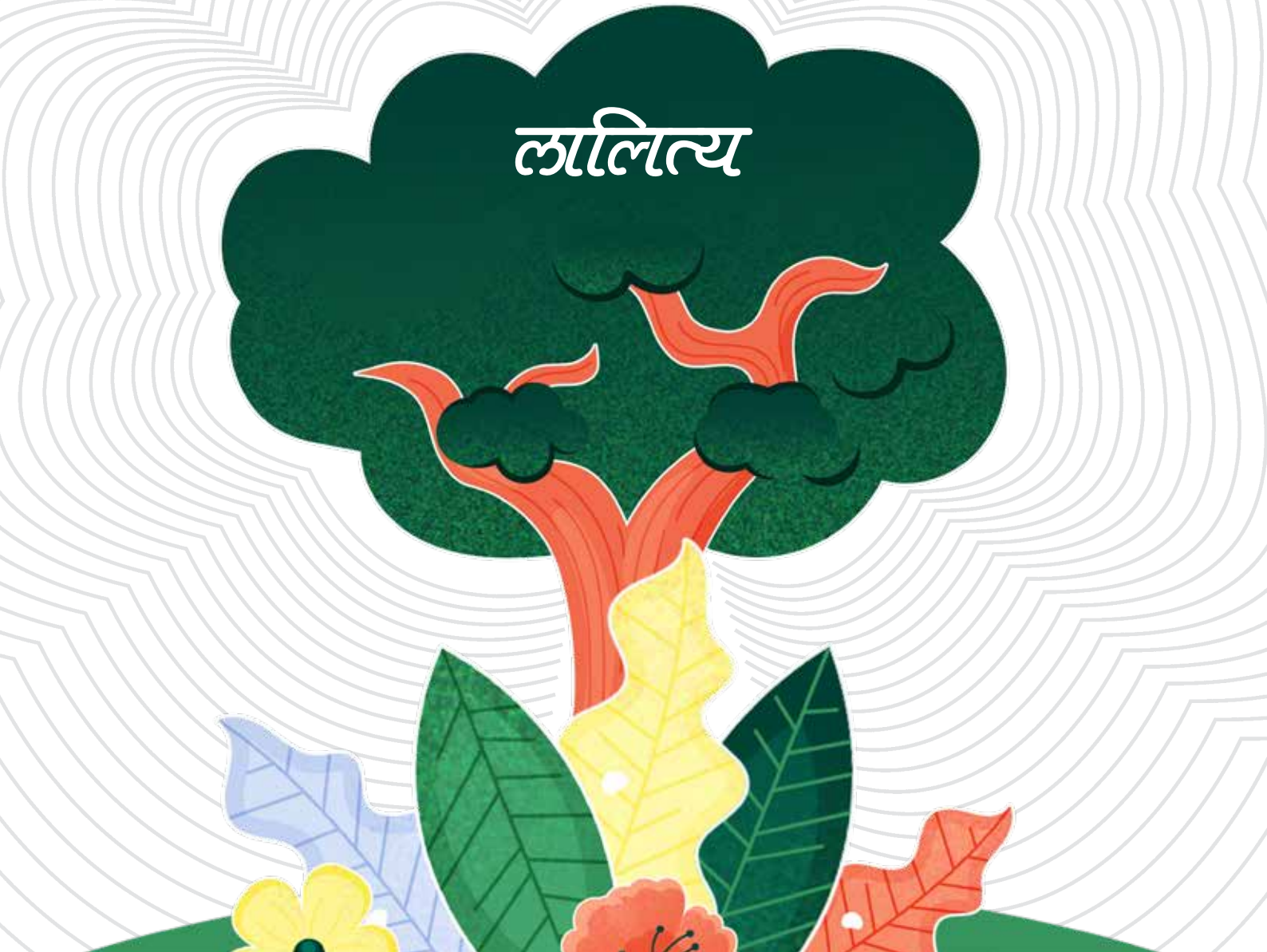

साहित्य

धरती की गरिमा

श्री बिष्णु देव पण्डित
भा.वा.अ.शि.प.- वन उत्पादकता संस्थान,राँची

हवा और पानी बिन जीवन कभी होता नहीं मुमकिन।
बिना कानन हवा और पानी भी होगा नहीं मुमकिन।।
धरा अंबर बनाया रब ने तेरे भोग के काबिल,
हरा श्रृंगार धरती का हड़पना छोड़ दे मानव ।
है ये श्रृंगार धरती का दिया उपहार उस रब का,
इसे उजड़ी हुई धरती बनाना छोड़ दे मानव।
उदर तो था भरा धरती का सोने और चांदी से,
इसे उजड़ी हुई एक कोख करना छोड़ दे मानव ।
ललक तो है मनुज की चांद और सूरज भी छूने को,
मगर धरती को तू सुनसान करना छोड़ दे मानव।
दिया विज्ञान ने ये ज्ञान फुदकने और संवरने को,
धरा को रख हरा खुद पर अकड़ना छोड़ दे मानव ।
तरसते हों जहाँ बसने को ऋषि और मुनि भी,
धरा को ही बना डालें चलो कश्मीर ओ मानव ।

02

कब तक

श्रीमती सुधा पाण्डेय
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

बे मौसम फल की चाहत में, पत्थर मारोगे कब तक,
सुख के पेड़ों की छाया में, वक्त गुजारोगे कब तक।
वो जो पल बीत गया है, आया है, न आएगा,
सन्नाटों में चीख-चीख कर, उसे पुकारोगे कब तक।
सच्चाई को एक दिन, दिल से करना होगा कबूल,
अपनों से छोटों पर गुस्सा और उतारोगे कब तक।
मंजिल की चाहत आंखों में, होती यूं हर वक्त नहीं,
जो करना हो कर ही डालो, और बिचारोगे कब तक।
दुनिया में मां-बाप से बढ़कर, खुदा नहीं हो सकता,
अपने दिल में सच्ची ये बात, उतारोगे कब तक।
ख्वाब सजाना पलकों पर, है अच्छी बात नहीं लेकिन,
ख्वाबों में जीत- जीत कर तुम हारोगे कब तक।

03

वृक्ष

श्री संदीप चक्रवर्ती
भा.वा.अ.शि.प. - काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु

वो देखो खड़ा हैं अडिगता से
नहीं करता आशा किसी से
निस्वार्थ सेवा भाव है जिसका जीवन
'वृक्ष' इसे कहते है, बंधुगण।

वृक्ष नहीं तो कुछ भी नहीं
जीवन का कोई अस्तित्व नहीं
करबद्ध होकर इसे प्रणाम
इसकी उपासना है एक काम।

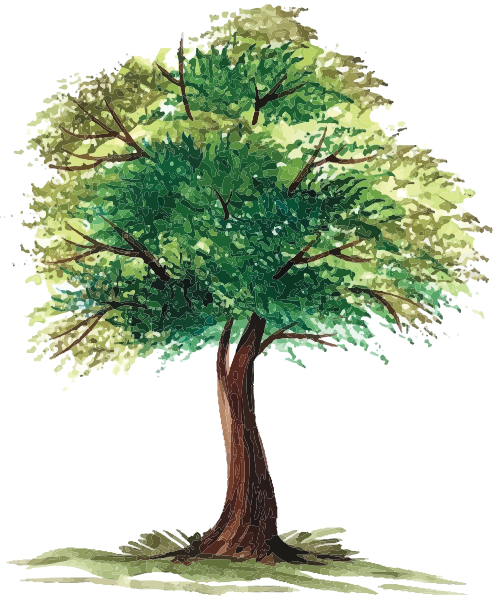

सदा रहो कृतज्ञ वृक्ष का
करो न अभिमान,
इससे मानव जीवन में
खुशहाली है श्रीमान।

नहीं छुपी हैं ये सारी बातें
वृक्ष से हम हरियाली पाते,
धरती को यह हरा-भरा बनाए
पक्षी इस पर नीड़ बनाएं।

इच्छा शक्ति को करो प्रबल
हरियाली के पथ पर चल
कभी न हो स्वार्थ सफल
वृक्ष सदा देता है फल।

कर बुलंद ये नारा
"वृक्ष ही जीवन है हमारा"
इस मंत्र को आगे बढ़ाओ
खुशहाल जीवन का राह दिखाओ।

04

बेसहारा मां बाप

श्री आशीष सिंह बिष्ट
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

ऐसा भी क्या हुआ बेटा, जो यूं मुख मोड़ लिया,
ढलती हुई उम्र में यूं हाथ मां-बाप का छोड़ दिया,
कितने कष्ट सहे थे मां ने तुझे दुनिया दिखाने को,
तुझ नासमझ ने उसी की ममता को कौड़ी के भाव तोल दिया,
मोल भाव तुझे अभी कहां समझ आएगा,
सुन, बेटा तेरा भी तो एक उम्र के बाद यही समय आएगा,
तुझे तब समझ आएगा, क्यों लोग अक्सर कहा करते हैं,
बेटा, जो बोएगा वही तो खाएगा।

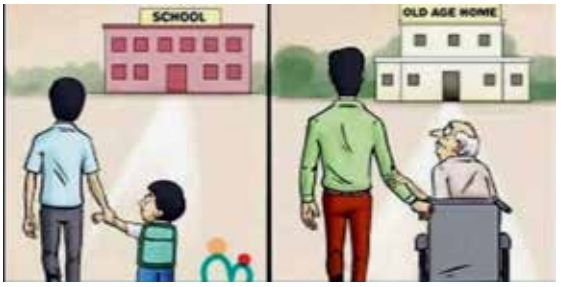

बढ़ते दौर में बढ़ते कदम

श्री अभिषेक खन्ना
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

बढ़ते दौर में बढ़ाते कदम, अक्सर यूं ही भटक जाते हैं लोग,
ख्वाबों को पूरा करने की चाह में, छोटा रास्ता अपनाते हैं लोग।
भूल जाते हैं खुद को दूसरों के लिए, पैसों से दुनिया नापते हैं लोग,
बढ़ते दौर में बढ़ते कदम, अक्सर यूं ही भटक जाते हैं लोग।

आज़ादी मिले हमे हुए कई साल, पर न खुद आज़ाद हो पाते हैं लोग,
तकनीकी दौर में तकनीक के आगे, खुद को कैद करवाते हैं लोग।

किसी की खूबी का फायदा, कोई उसकी जानकारी के बिना उठाता है,
उसको चंद रूपए थमाकर, सारा श्रेय खुद ले जाता है।
जिन बेचारे गरीबों की रोज़ी रोटी जिस दुकान से चलती है,
उसी दुकान में मुफ्त का खाकर, वो अपनी प्रसिद्धि बढ़ाता है।

क्या हुआ अगर कोई देख रहा है, क्या हुआ अगर कुछ छूट रहा है,
माँ-बाप हो चाहे रिश्ते नाते, सबको नीचा दिखाते हैं लोग।

कोई एक तस्वीर खिंचवाने की खातिर, नदी में बह जाता है,
कोई अपनी ही मौत का सीधा प्रसारण, लोगों को दिखाता है।
किसी के कहने पर कोई व्यक्ति, दूसरे को हानि पहुंचाता है
और आम आदमी बस उस मंज़र का चलचित्र बनाता जाता है।

ज़िंदगी को ताक पर रख कर, जिंदगी से यूं खेलते हैं लोग,
मशहूर होने की चाह में, ज़िंदगी से हाथ धो बैठते हैं लोग।

फिर भी देखो इस दुनिया में, होते हैं कुछ ऐसे लोग,
जिनको कभी नहीं लगता है, प्रसिद्धि का ऐसा रोग।
वो पैसों के लिए नहीं भूलते, अपने मूल सिद्धांतों को,
सोच समझकर जो रखते हैं, अपने बढ़ते कदमों को।

माँ-बाप और परिजनों को, जो रखते पैसों से ऊपर हैं,
ऐसे लोग ही अक्सर, ख्वाबों को पूरा करते हैं।
नहीं भूलते अपना वजूद, खुशियों से जिंदगी सजाते हैं लोग,
बढ़ते दौर में बढ़ते कदम, ऐसे ही लक्ष्य को पाते हैं लोग।
बढ़ते दौर में बढ़ते कदम, ऐसे ही रास्ता बनाते हैं लोग।

गुरू की महिमा महान

श्रीमती सीमा ठाकुर
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

गुरू, रब्रह्मा, गुरूर विष्णु, गुरू देवो महेश्वर,
गुरू साक्षात परब्रह्म, तस्मै श्री गुरूवे नम:

माता पिता ने जन्म दिया, पहला गुरू कहाये

ज्ञान और संस्कार की शिक्षा गुरू से ही पायी,

गुरू ने जीने की कला सिखायी

अंधेरे में उजाले जैसे गुरू, प्रेरणा और अकांक्षा का बीज गुरू

गुरू बिना ज्ञान नही, ज्ञान बिना आत्मा नहीं ।

गुरू समान दाता नहीं, याचक शीष समान, तीनों लोको सम्पदा, सो गुरू दीन्ही दान,

गुरू की महिमा महान है, गुरू बिना अधूरा जहान है

गुरू का बोया बीज पेड़ बन जाता है

याद रखो चाणक्य ने इतिहास रचा डाला,

बालक चन्द्रगुप्त को चक्रवर्ती राजा बना डाला,

संदीपनी जैसे गुरू सदियों से होते आये हैं, कृष्ण जैसे बीज बोते आये हैं।

गुरू से ही अर्जुन और युधिष्ठर जैसे नाम हैं,

गुरू के ज्ञान में जो पलता है वो पीछे न रह पाये,

गुरू की शिक्षा से मिलता समाधान है,

अन्त में कबीर दास जी का दोहा बोलना चाहूंगी

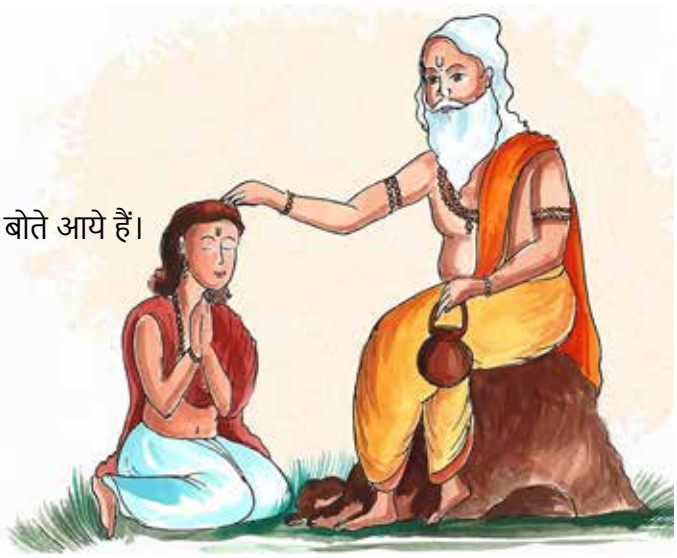

गुरू गोविंद दोउ खडे, काके लागू पाय,
बलिहारी गुरू आपने गोविंद दियो बताय।

वो पिता ही तो है

सुश्री दीक्षा वर्मा
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

अभिलाषा को दिया विराम, मोल में दे अपना आराम,
रंग रूप सब छोड़ चुका हूँ , जीवन उद्देश्य मोड़ चुका हूँ,
इस कोलाहल के बीच सहेज ,वो सज्जन मृदु धन में लबरेज़
जो न्योछावर भाग्य कर जाता है, वो पिता नाम कहलाता है|

वो खोज-खोज कर रस लाता, सुविधाओ का उपवन सजाता ,
मुख- मंडल पे रहे मुस्कान, वो चुन चुन कर है गगन बनाता ,
उस भयभीत, पर्वत से आई, विश्वास की सरिता बहाई,
जो छांव धूप में लाता है, वह पिता नाम कहलाता है|

वो सख़्ती में ही पलते हैं, भाव धर्म से जगते हैं,
जब भीड़ सैकड़ो देखेंगे, क्षण भर में वो पलटेंगे,
संतान है, हृदय का पात है, उनके आशीष का हक़दार है,
खोजती निगाहों की तुष्टि को भला, वो कैसे नहीं मचलेंगे,
इसलिए शायद,
जो अश्रु ख़ुशी के बन जाता है, वो पिता नाम कहलाता है|

पिता कभी स्वयं को महत्व नहीं देते, परंतु -
वो छांव है पेड़ की,
वो ठंडक है रात की,
वो रोटी है भूख की,
वो बोली है मूक की,

वो गहराई है सागर की,
वो जज़्बात है आदर के,
वो सुकून है प्यास की,
वो उम्मीद है आस की,

वो शिक्षा है ऋषि की,
वो अश्रु है ख़ुशी की,
वो आशा है मान की,
वो एक पिता है संतान की

पिता वो अवर्णनीय संवेदना है जिसकी बोली में संतान के लिए चिंता झलकती है, माता के दिए जन्म को जीवन बनाए, वो पिता ही तो है।

लेखक परिचय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

डॉ. शैलेंद्र कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्रीमती सीमा ठाकुर
निजी सचिव

श्री अभिषेक खन्ना
तकनीकी सहायक

श्री आशीष सिंह बिष्ट
आशुलिपिक ग्रेड II

सुश्री दीक्षा वर्मा
शोध छात्रा

भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

डॉ. मनीषा थपलियाल
वैज्ञानिक -जी

डॉ. माला राठौर
वैज्ञानिक-एफ

डॉ. कुमुद दुबे
वैज्ञानिक- ई

डॉ. पारुल भट्ट कोटियाल
वैज्ञानिक-ई

श्री आलोक यादव
वैज्ञानिक- ई

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा
वैज्ञानिक-डी

श्री एल.आर. लक्ष्मीकांत पंडा
वैज्ञानिक-बी

श्रीमती रोशनी चौहान
तकनीकी अधिकारी

श्री सुरेन्द्र सिंह
परियोजना सहायक

श्री आशीष कुमार
तकनीशियन

श्रीमती सुधा पाण्डेय
धर्मपत्नी डॉ. वी.पी. पांडेय
मुख्य तकनीकी अधिकारी

सुश्री दर्शिता रावत
शोध छात्रा

श्री कुलदीप चौहान
वरिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री राहुल निषाद
परियोजना सहायक

श्री आशीष कुमार यादव
परियोजना सहायक

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

डॉ. संदीप शर्मा
वैज्ञानिक -जी

डॉ. वनीत जिश्टु
वैज्ञानिक-ई

डॉ. स्वर्णलता
वैज्ञानिक-डी

डॉ. पीताम्बर सिंह नेगी
वैज्ञानिक-डी

डॉ. प्रवीण रावत
वैज्ञानिक-बी

श्रीमती शिल्पा
मुख्य तकनीकी अधिकारी

डॉ. अश्वनी कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

डॉ. विनोद कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्रीमती सविता कुमारी बन्याल
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री दुष्यन्त कुमार
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

सुश्री सोनिका शर्मा
वरिष्ठ तकनीशियन

श्री मनोज कुमार
तकनीशियन

श्री विक्रम चौहान
परियोजना सहायक

श्री पंकज कुमार
परियोजना सहायक

सुश्री यामिनी
पीएचडी शोध अध्येता

डॉ. तनय बर्मन
परियोजना सहायक-I

डॉ. शिव पॉल
कनिष्ठ परियोजना सहायक

सुश्री प्रीतिका चौहान
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री शीशराम डंगवाल
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

डॉ. ऋचा ठाकुर
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

सुश्री निशा
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

सुश्री ईनू बिदलान
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री शिवांशु गौतम
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

भा.वा.अ.शि.प.- वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद

डॉ. स्वपनेंद्व पट्टनायक
वैज्ञानिक-जी

डॉ. पंकज सिंह
वैज्ञानिक-सी

सुश्री शुभी कुल्श्रेष्ठा
वरिष्ठ तकनीशियन

श्री के. चन्द्र प्रकाश
कनिष्ठ अनुसंधान सहायक

सुश्री मेरी चन्दना
कनिष्ठ अनुसंधान सहायक

भा.वा.अ.शि.प.- वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी

भा.वा.अ.शि.प.- वन उत्पादकता संस्थान, राँची

श्री बिष्णु देव पण्डित
तकनीकी अधिकारी

भा.वा.अ.शि.प.- काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु

डॉ. कृष्ण कुमार पांडेय
वैज्ञानिक-जी

डॉ. राकेश कुमार
वैज्ञानिक-एफ

श्री संदीप चक्रवर्ती
तकनीकी अधिकारी

श्री आकाश आनंद सोलंकी
तकनीकी अधिकारी

सुश्री प्रिया नगराईक
शोध छात्रा

सुश्री ऋचा बंसल
शोध छात्रा

भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

डॉ. ध्रुब ज्योति दास
वैज्ञानिक-एफ

डॉ. मनीष कुमार सिंह
वैज्ञानिक-ई

डॉ. के- जी- भूटिया
वैज्ञानिक - बी

डॉ. पी- एल- भूटिया
वैज्ञानिक - बी

डॉ. सोनकेश्वर शर्मा
वैज्ञानिक – बी

श्री प्रदीप कुमार हजारिका
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री अंकुर ज्योति सैकिया
तकनीकी सहायक

श्री अरबिन्द डेका
तकनीकी सहायक

श्री प्रदीपन राय
तकनीकी सहायक

भा.वा.अ.शि.प.-उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

डॉ. ननिता बेरी
वैज्ञानिक-एफ

डॉ. एस.सी. बिस्वास
वैज्ञानिक – डी

डॉ. एस. एन. मिश्रा
वैज्ञानिक – सी

श्री मनीष कुमार विजय
वैज्ञानिक- बी

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री नाहर सिंह मावई
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री डी.पी. झारिया
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री ए.फ्रान्सिस
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्रीमती शशिकिरण बर्वे
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री एम.के.जोशी
तकनीकी अधिकारी

श्री सौरभ दुबे
तकनीकी अधिकारी

श्री आनंद कुमार
तकनीकी सहायक

श्री सुमित सिंह ठाकुर
तकनीकी सहायक

सुश्री रिंकी पटैरिया
परियोजना सहायक

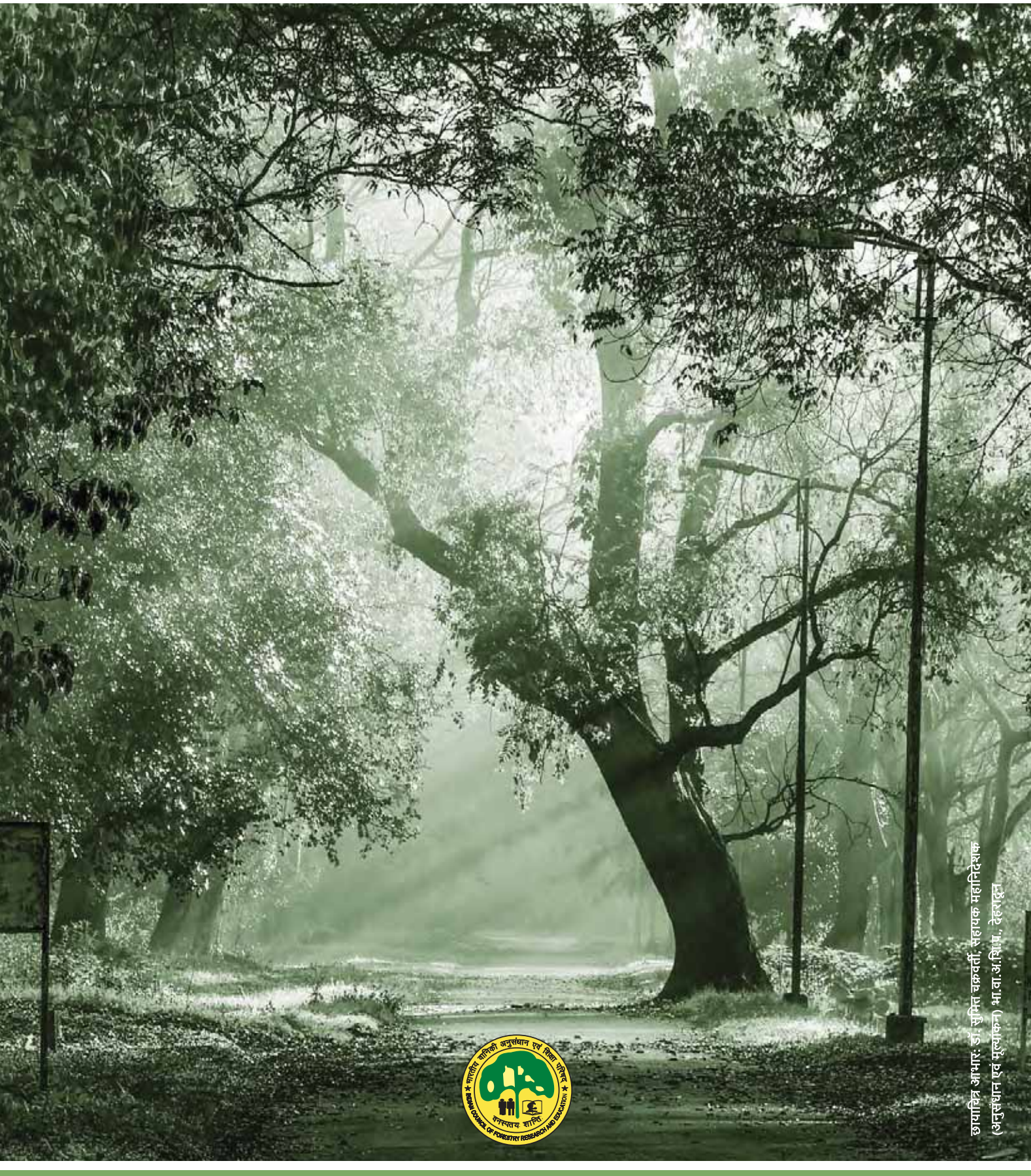

छायाचित्र आभार: डॉ. सुमित चक्रवर्ती, सहायक महानिदेशक
(अनुसंधान एवं मूल्यांकन) भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

प्रकाशित :
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग,
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)
पो. ओ. न्यू फॉरेस्ट, देहरादून–248006 उत्तराखण्ड, भारत
www.icfre.gov.in

रूप-रेखा एवं मुद्रण- शिवा ऑफसेट प्रेस,
देहरादून, दूरभाष : 0135-2715748